Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

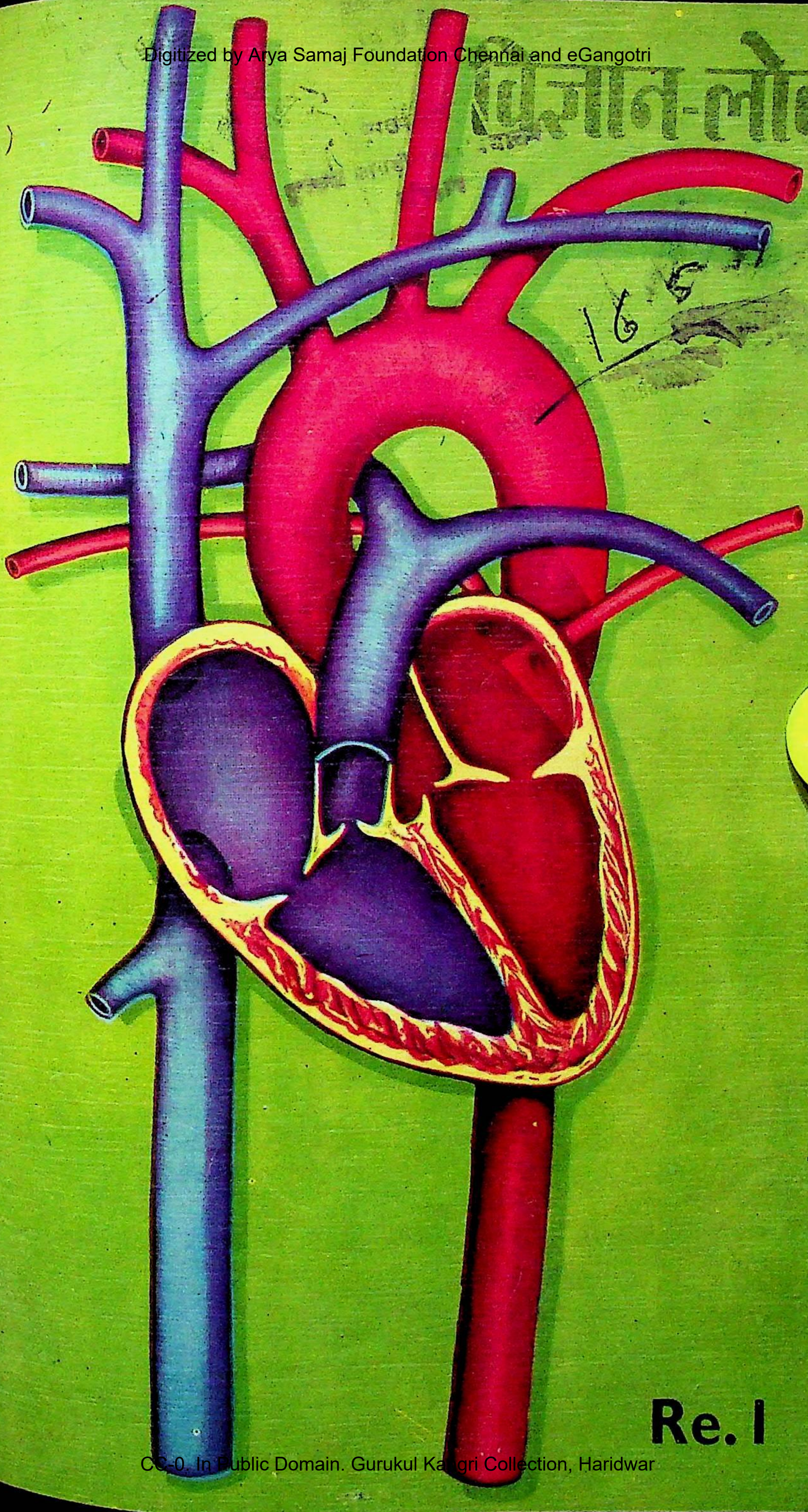

Re. 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

हमारा हृदय — ३
—रामगोपाल इगलासिया

हृदय रोगों की रोकथाम — ८
—प्रो. कृष्णशरण माथुर

हृदयवाहिका रोगों की रोकथाम : युवा वर्ग की आदतें — ११
—डा. जैड. फैजफर

हमारे शरीर में खनिज : सन्तुलन में गड़बड़ी — १३
—डा. आर. मसीरोनी

दिल का दौरा — १६
—प्रो. फकीरचन्द शुक्ल

यह शोरगुल — २१
—ए. के. सिन्हा

दो आविष्कार : टीका और पेनिसिलिन — २४
—सुभाषचन्द्र अग्रवाल

धूल ही धूल — ३०
—रमेशप्रसाद शर्मा

सस्ता औषधें — ३४
—डा. सत्यकुमार

वायुमण्डल के अद्भुत रहस्य — ३८
—कुलदीप चड्ढा

भविष्य के बिजलीघर — ४४
—डा. मौजमसिंह राजपूत

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियां — ४६

अपनी बात

अपोलो-१६ अभियान भी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। चन्द्रतल की जांच-पड़ताल को शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी और जुड़ गयी। अपोलो-११, अपोलो-१२, अपोलो-१४ और अपोलो-१५ अन्तरिक्ष यानों द्वारा किये गये चन्द्र-अभियानों के बाद अब अपोलो-१६ के इस चन्द्र-अभियान की कुछ विशेषताएं और रहीं। इस अभियान का उद्देश्य अब तक किये गये समानव अभियानों से अधिक जानकारी प्राप्त करना तथा चन्द्र-तल पर एक खगोल वेधशाला स्थापित करना भी था। अन्तरिक्ष के पर्यावरण का जीवों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके अध्ययन हेतु इस यान में लाखों सूक्ष्म जीव तथा अनेक जैव पदार्थ भी भेजे गये थे।

अपोलो-१६ के तीनों यात्रियों—जॉन डब्ल्यू. यंग, टामस के. मैटिंगली तथा चार्ल्स एम. ड्यूक (जूनियर)—का अभिनन्दन करते हुए हम आशा करते हैं कि उनके द्वारा लाये गये चन्द्र-चट्टानों तथा मिट्टी के नमूनों, चित्रों, सर्वेक्षण आंकड़ों आदि से चन्द्रतल के रहस्यों और उसके द्वारा ब्रह्माण्ड के रहस्यों का उद्घाटन करने की दिशा में विज्ञान के चरण तेजी से आगे बढ़ेंगे।

वर्ष १३ — अंक ४

एक प्रति : Re. 1.00
वार्षिक : Rs. 12.00

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

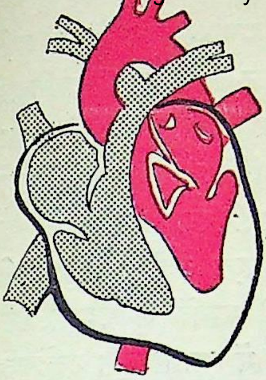

हमारा हृदय

एक चमत्कारी पम्प

रामगोपाल इगलासिया

हमारे शरीर में संचरण करने वाला रुधिर हमारी जीवन-धारा है । जो वायु हम श्वास द्वारा लेते हैं उसके प्राण-तत्त्व आक्सीजन को फेफड़ों से शरीर की सूक्ष्मतम इकाइयों—कोशिकाओं—में पहुंचाने का महत् कार्य रुधिर ही करता है । जो भोजन हम ग्रहण करते हैं उसके पोषक तत्त्वों को कोशिकाओं तक ले जाने का गुरु भार रुधिर का ही है ।

रुधिर ही कोशिकाओं में उत्पन्न हुए दूषित पदार्थों को बाहर निकालता है । शरीर के ताप को स्थिर बनाये रखना तथा रोगों से शरीर की रक्षा करना भी रुधिर का दायित्व है ।

ये महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने के लिए रुधिर को समस्त शरीर में, वाहिकाओं के गहन जटिल जाल में से होकर, अत्यन्त तीव्रगति से, निरन्तर संचरण करते रहना पड़ता है ।

रुधिर को परिसंचरण कराने का कार्य है हृदय का—जो वास्तव में एक शक्तिशाली एवं चमत्कारी पम्प है तथा जो हमारे जीवन-पर्यन्त, विना रुके, सतत् परिश्रम करता रहता है । हृदय का क्रियाशील रहना ही जीवन है; हृदय की क्रिया रुक जाना ही मृत्यु है ।

हृदय की संरचना

साहित्य तथा सामान्य भाषा में हृदय—दिल—हार्ट—का चाहे जो अर्थ हो, दरअसल यह हमारे शरीर रूपी कारखाने का पंपिंग स्टेशन है । यह नाशपाती की आकृति का तथा लगभग बंधी मुट्ठी के आकार का एक खोखला मांसपेशीय अंग है । इसका औसत वजन वयस्क पुरुष में लगभग ३३० ग्राम तथा वयस्क स्त्री में लगभग २६० ग्राम होता है । यह दोनों फेफड़ों के बीच कुछ बायीं तरफ स्थित है ।

सम्पूर्ण हृदय एक दोहरी झिल्ली की थैली में रहता है जिसे **हृदयावरण (पेरिकार्डियम)** कहते हैं । इससे एक द्रव रिसता रहता है जो हृदय को तर रखता है और हृदय के फैलते व सिकुड़ते समय उसे रगड़ से बचाता है ।

हृदय एक मांसपेशीय पट (सेप्टम) द्वारा दो खड़े भागों—दायें तथा बायें—में विभाजित है । इन दोनों में आपस में कोई सम्बन्ध नहीं—दोनों स्वतंत्र रूप से अलग-अलग हैं जिसके कारण हृदय एक पम्प नहीं बल्कि डबल पम्प है । इन दोनों भागों के पुनः दो-दो भाग हैं—एक ऊपरी तथा दूसरा निचला । ऊपरी भाग **अलिन्द (आरिकिल)** और निचले भाग **निलय (वेंट्रिकिल)** कहलाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

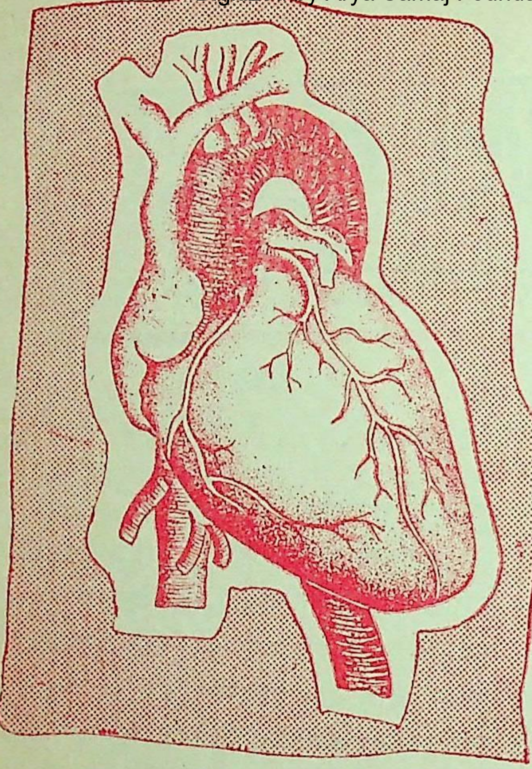

हृदय तथा सम्बद्ध वाहिकाएं : बाह्य आकृति

हैं। इस प्रकार हृदय के चार भाग हैं—— १. दायां अलिन्द, २. दायां निलय, ३. बायां अलिन्द, ४. बायां निलय।

दोनों ओर के अलिन्द तथा निलय के बीच एक-एक कपाट (वाल्व) है। दायें अलिन्द तथा निलय के बीच का कपाट तीन वलन (फ्लैप) वाला है जिससे इसे **त्रिवलनी (ट्राइकस्पिड)** कहते हैं। बायें अलिन्द तथा निलय के बीच का कपाट दो वलन वाला है और **द्विवलनी (बाइकस्पिड)** कहलाता है।

दायें निलय में एक कपाट और है जो **फुफ्फुसीय धमनी (पलमोनरी आरटरी)** में जाने वाले रुधिर का नियंत्रण करता है। इसी प्रकार बायें निलय में भी एक और कपाट है जो **महाधमनी (आयोरटा)** में जाने वाले रुधिर का नियंत्रण करता है। ये वाल्व रुधिर को एक ही दिशा में बहने देते हैं, उससे विपरीत दिशा में नहीं।

सम्बद्ध वाहिकाएं

हृदय के दायें अलिन्द में दो बड़ी रुधिर वाहिकाएं शरीर के ऊपरी तथा निचले भागों से अशुद्ध रुधिर लाती हैं। इन्हें क्रमशः **उच्च महाशिरा (सुपीरियर वेना केवा)** तथा **निम्न महाशिरा (इनफीरियर वेना केवा)** कहते हैं। दायें निलय से एक बड़ी वाहिका निकलती है जो आगे दो भागों में विभाजित होकर दोनों फेफड़ों में जाती है। इन्हें **फुफ्फुसीय धमनियां (पलमोनरी आरटरीज)** कहते हैं। फुफ्फुसों में शुद्ध हुए रुधिर को बायें अलिन्द में लाने वाली वाहिकाएं **फुफ्फुसीय शिराएं (पलमोनरी वेन्स)** कहलाती हैं।

शुद्ध रुधिर को बायें निलय से सम्पूर्ण शरीर में ले जाने वाली वाहिका को **महाधमनी (आयोरटा)** कहते हैं। २·५ सेंटिमीटर से भी मोटी यह प्रमुख धमनी हृदय से निकल कर एक मेहराब बनाती है। इसमें से सबसे पहले दो धमनियां निकलती हैं जो अनेक शाखाओं में विभाजित होकर हृदय की मांसपेशी को रुधिर प्रदान करती हैं। इन्हें **हृद्-धमनियां (कोरोनरी आरटरीज)** कहते हैं। ये धमनियां हृदय को मुकुट (कोरोना) की भांति घेरे रहती हैं इसीलिए इन्हें कोरोनरी धमनियां कहते हैं। महाधमनी के मेहराब के शिखर से तीन धमनियां शरीर के ऊपरी भागों——सिर, गर्दन, वक्ष, हाथ——को रुधिर पहुंचाती हैं। महाधमनी के मेहराब का निचला भाग कशेरुक दण्ड के निकट होता हुआ उदर में पहुंचता है जहां उसमें से शाखा-प्रशाखाएं निकलकर शरीर के निचले भागों में रुधिर पहुंचाती हैं।

हृदय की क्रियाविधि

हमारा हृदय प्रत्येक धड़कन में एक बार सिकुड़ता तथा फैलता है। सिकुड़ने की क्रिया को **प्रकुंचन (सिस्टोल)** तथा फैलने की क्रिया को **अनुशिथिलन (डायस्टोल)** कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इन्हीं क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप रुधिर का संचलन होता है। जब हृदय फैलता है तो महाशिराओं से अशुद्ध रुधिर दायें अलिन्द में प्रवेश करता है। ठीक उसी समय फुफ्फुसों में शुद्ध हुआ रुधिर फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा बायें अलिन्द में प्रवेश करता है। अब दोनों ओर के अलिन्दों तथा निलयों के बीच के कपाट खुलते हैं, और रुधिर निलयों में जा पहुंचता है। जब ये रुधिर से लगभग भर जाते हैं तो अलिन्द सिकुड़ते हैं और उनका शेष रुधिर भी निलयों में पहुंच जाता है। यह प्रकुंचन (सिस्टोल) क्रिया का प्रारम्भ है।

तत्पश्चात निलय सिकुड़ते हैं और अलिन्द-निलय कपाट बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों निलय कुछ क्षणों के लिए रुधिर के रुद्ध कोष्ठ बन जाते हैं। अन्ततः दोनों निलयों के दूसरे कपाट (फुफ्फुसीय

हृदय की आन्तरिक संरचना, सम्बद्ध वाहिकाएं तथा क्रियाविधि

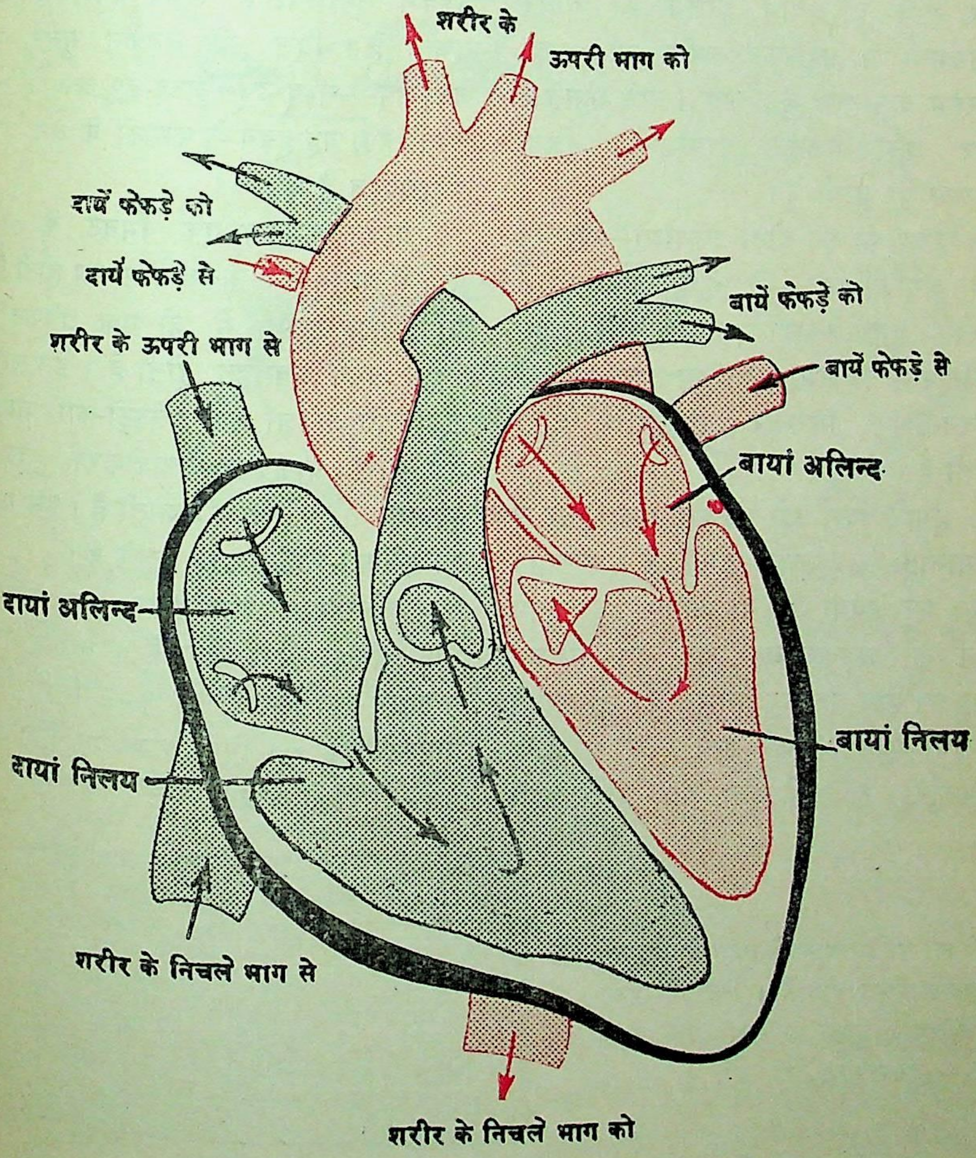

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

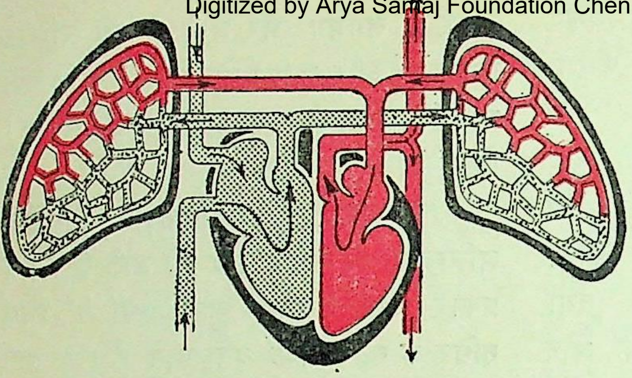

हृदय की क्रियाविधि इस सरल रेखा-चित्र से भली भांति समझी जा सकती है––किस प्रकार शरीर का अशुद्ध रुधिर दायें अलिन्द व निलय में होकर फेफड़ों में पहुंचता है और वहां शुद्ध होकर बायें अलिन्द व निलय में होता हुआ शरीर में पहुंचता है

धमनी तथा महाधमनी वाले) खुलते हैं। फलस्वरूप दायें निलय का रुधिर फुफ्फुसीय धमनी में होकर फेफड़ों में पहुंच जाता है और साथ ही, बायें निलय का रुधिर महाधमनी में पहुंचकर शरीर की यात्रा आरम्भ कर देता है। अब निलय फैलते हैं और अनुशिथिलन (डायेस्टोल) क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

हृदय की इन दोनों क्रियाओं––प्रकुंचन तथा अनुशिथिलन––के बीच जो क्षणिक अवकाश होता है वही एक प्रकार से हृदय के विश्राम का समय है। इन क्रियाओं की जीवन भर निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है।

हमारे **दिल की धड़कन** एक मिनट में सामान्यतः ७२ बार होती है। भागदौड़ करने पर अथवा भय या आवेश के समय दिल की धड़कन बढ़ जाती है। धड़कन हृदय पर हाथ रखकर अनुभव की जा सकती है तथा कान रखकर सुनी जा सकती है (डाक्टरों के स्टेथेस्कोप यंत्र द्वारा इसे स्पष्टतः सुना जाता है)। जिन स्थानों पर धमनियां अस्थियों के ऊपर होकर गुजरती हैं वहां भी (नब्ज पर) दिल की धड़कन उंगलियों से छूकर अनुभव की जा सकती है। दिल की धड़कन सुनने पर लब्ब्-डप्––लब्ब्-डप्––लब्ब्-डप् आवाज सुन पड़ती है। यह हृदय के कपाटों के बन्द होने की आवाज है।

प्रत्येक धड़कन एक मिनट के ७२वें भाग में अर्थात् ५/६ सेकंड में सम्पन्न होती है। इतने अल्प समय में ही एक धड़कन में अनेक तरंगें प्रवाहित होती हैं। इन तरंगों के विद्युत-आवेशों को इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राफ यंत्र द्वारा ग्राफ पर रेकार्ड करके हृदय के स्वास्थ्य की परीक्षा की जाती है। इस ग्राफ को **इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम** कहते हैं।

रुधिर दाब (ब्लड प्रेशर) स्फिगमोमेनो-मीटर यंत्र से मापा जाता है। वयस्क पुरुष में रुधिर दाब सिस्टोलिक १२० मिमी तथा डायेस्टोलिक ८० मिमी सामान्यतः होता है। १५० मिमी से अधिक सिस्टोलिक तथा १००

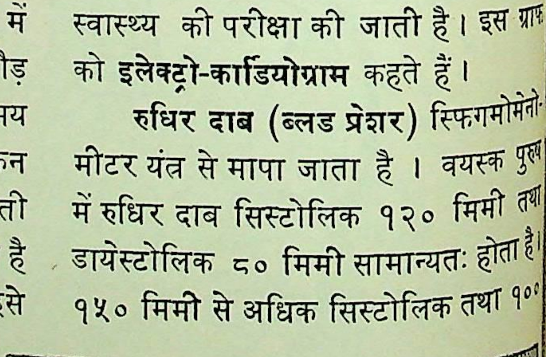

इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम में हृदय के विद्युत-आवेश अंकित होते हैं। चित्र में ऊपर एक स्वस्थ हृदय का तथा नीचे रुग्ण हृदय का इ. का. ग्रा. है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राफ यंत्र द्वारा हृदय के विद्युत-आवेशों को ग्राफ पर अंकित किया जा रहा है

मिमी से अधिक डायेस्टोलिक प्रेशर असामान्य है और रोग का लक्षण माना जाता है। इस अवस्था को हाइपरटेन्शन या हाइ ब्लड प्रेशर कहते हैं। सामान्य से निम्न रुधिर दाव को हाइपोटेन्शन या लो ब्लड प्रेशर कहते हैं।

रुग्ण हृदय का उपचार औषधियों से तो किया ही जाता है, शल्य-चिकित्सा द्वारा भी उपचार अब सामान्य क्रिया है। और अब तो नकली हृदय से काम चलाया जाता है तथा हृदय-परिवर्तन (एक मनुष्य का हृदय दूसरे मनुष्य में लगा देना) भी साधारण बात हो गयी है।

दिल की धड़कनें

(प्रति मिनट)

हाथी	: २५	वयस्क मनुष्य	: ७२	मुर्गी	: १५०–२००
घोड़ा	: ४०	३ वर्षीय बालक	: १००	चिड़िया	: २००–३००
खरहा	: ६५	नवजात शिशु	: १४०	चूहा	: ४००–६००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय रोगों की रोकथाम

प्रो. कृष्णशरण माथुर
एम.डी., एफ.आर.सी.पी., एफ.ए.सी.सी., एफ.आइ.सी.ए., एफ.ए.एम.एस., एफ.एन.ए.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, स्नातकोत्तर मेडिसिन विभाग, सरोजनी नायडू मेडिकल कालेज, आगरा

हृदय रोगों के बारे में दो भ्रान्तियां प्रचलित हैं। प्रथम यह कि हृदय रोग मध्य तथा वृद्ध अवस्था में होने वाले रोग हैं। द्वितीय यह कि ये 'अवश्यंभावी' हैं। दोनों ही धारणाएं गलत हैं क्योंकि बच्चों को, यहां तक कि नवजात शिशुओं को भी, हृदय की व्याधियां होती हैं, और अधिकांश हृदय रोग आवश्यक अनिष्ट नहीं होते, उन्हें रोका जा सकता है।

हृदय रोगों के प्रकार एवं कारण

हृदय रोगों के कारणों के अनुसार उनके अनेक प्रकार हैं, जिनमें पांच प्रमुख हैं——

(१) **जन्मजात (कॉनजेनिटल)** हृदय रोग विकास की त्रुटियों के कारण होते हैं, बच्चे इस विकार सहित जन्म लेते हैं।

(२) **संधिवातीय (रूमेटिक)** हृदय रोग वात ज्वर के परिणामस्वरूप हृदय के कपाटों (वाल्वों) पर क्षतचिह्न होने तथा हृदय की मांसपेशी को क्षति पहुंचने से होते हैं।

(३) **हृद्-धमनीय (कोरोनरी)** हृदय रोग कारोनरी धमनियों के संकरे होने अथवा अवरुद्ध होने के कारण होते हैं और सीने में दर्द, दिल का दौरा या अचानक मृत्यु के रूप में प्रकट होते हैं।

(४) **अतिक्षोभात्मक (हाइपरटेन्सिव)** हृदय रोग उच्च रुधिर दाब (हाइ ब्लड प्रेशर) के कारण होते हैं।

(५) **फुफ्फुसीय (पलमोनरी)** हृदय रोग फेफड़ों के पुराने रोगों के कारण होते हैं।

रोकथाम के उपाय

रूमेटिक हृदय रोग हमारे देश में सर्वाधिक प्रचलित है। पांच से पन्द्रह वर्ष की आयु वाले बालकों के गले में हिमोलिटिक स्ट्रेप्टोकॉकस नामक बैक्टीरिया का संक्रमण होने से संधिवातीय (रूमेटिक) ज्वर होता है। इस ज्वर के कई दौर होते हैं। प्रथम अथवा

हृदय रोगों से बचना चाहें तो भोजन में मक्खन, घी, वनस्पति का प्रयोग कम करके चने तथा तेलों का प्रयोग बढ़ाइये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूमेटिक ज्वर के कारण कभी-कभी हृदय के वाल्वों में खराबी आ जाती है और वे ठीक तरह अपना कार्य नहीं कर पाते । इससे हृदय में भी खराबी आ जाती है । चित्र में हृदय के दायें भाग का वाल्व ठीक है, बायें भाग के वाल्व में खराबी आ गयी है

बाद के किसी दौर में हृदय प्रभावित हो जाता है । इसके सर्व सामान्य शिकार अस्वास्थ्यकर एवं अस्वच्छ स्थितियों में रहने वाले गरीब लोगों के बच्चे होते हैं ।

इस हृदय रोग के अपंगकारी प्रभावों से बच्चों को बचाने के कुछ उपाय ये हैं—गला खराब होने पर उसकी समुचित चिकित्सा; रूमेटिक ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में उसका निरूपण तथा व्यवस्था; प्रथम आक्रमण होने पर पुनरावृत्ति रोकने को पेनिसिलिन के प्रयोग द्वारा रोग-निरोधक उपचार; स्कूलों के बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण; निर्धनों के रहन-सहन तथा उनके आर्थिक-सामाजिक स्तर में सुधार ।

कोरोनरी हृदय रोग सबसे भयंकर हृदय रोग है । यह बुद्धिजीवियों तथा उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को अपना शिकार बनाता है—उस समय जब कि वे अपने उद्योग तथा व्यवसाय के कार्य-कलापों के शिखर पर होते हैं और जब उनके परिवारों तथा समाज को उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है । इस समय भारत में प्रचलित हृदय रोगों में यह दूसरे नम्बर पर है किन्तु पिछले तीन दशकों में यह रोग तेजी से बढ़ रहा है और कम उम्र वालों तथा गरीब लोगों में भी फैल रहा है ।

यह हृदय रोग उन व्यक्तियों को अधिक होता है जिनके वंश में दिल के दौरे या लकवे का इतिहास हो और जो उच्च रुधिर दाब तथा मधुमेह से पीड़ित हों । बहुत ज्यादा बीड़ी-सिगरेट पीने वालों में इसका खतरा दो-तीन गुना अधिक होता है । मोटापा, शारीरिक क्रियाहीनता, तथा मानसिक तनाव से भी इसका खतरा बढ़ता है । इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण रुधिर में रुधिर-वसा (कोलेस्टेरॉल) का बढ़ा हुआ गाढ़ापन है । जिनके रुधिर में २०० मिग्रा% से अधिक कोलेस्टेरॉल होता है उनमें उन

१

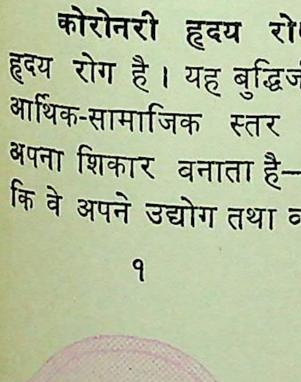

२

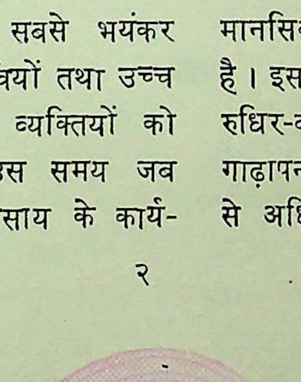

कोरोनरी हृदय रोग (कोरोनरी थ्राम्बोसिस) कोरोनरी धमनियों के अवरुद्ध होने के कारण होता है । चित्र १ में स्वस्थ धमनी का सेक्शन विशालित दिखाया गया है । चित्र २ में धमनी का छिद्र थ्राम्बस के कारण अवरुद्ध हो गया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों की अपेक्षा, जिनमें यह इससे कम प्रतिशत में होता है, हृदय रोगों के आक्रमण का खतरा दुगुना-तिगुना रहता है।

इस अनेक पहलू वाली समस्या को रोकने की कुंजी यही है कि इसका सब तरफ से मुकाबला किया जाय। चना और तेल (तिल व सरसों का तेल) रुधिर-वसा (कोलेस्टेरॉल) को कम करते हैं. संतृप्त वसाएं (मक्खन, घी, वनस्पति) तथा साफ की हुई शक्कर इसकी वृद्धि करते हैं। इस-लिए हमारे भोजन में चना तथा तेल अवश्य होना चाहिए और भोजन में कैलोरी तथा चिकनाई सीमित मात्रा में रहनी चाहिए। वजन कम रखना जरूरी है। व्यायाम हृदय के लिए लाभकारी है। धूम्रपान का निषेध कर दिया जाना चाहिए। व्यवसाय तथा परिवार की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक हल अभीष्ट है। यदि उच्च रुधिर दाब तथा मधुमेह हों तो उनका उपचार होना आवश्यक है। ये सब उपाय कम उम्र से ही शुरू कर दिये जाने चाहिए क्योंकि जब रोग के लक्षण प्रकट होते हैं तब तो इतनी देर हो चुकी होती है कि उपचार कठिन हो जाता है।

हाइपरटेन्सिव हृदय रोग रोका जा सकता है, यदि उच्च रुधिर दाब का इलाज किया जा सके। सेकंडरी हाइपरटेन्शन का इलाज हो सकता है और प्राइमरी हाइपर-टेन्शन को नियंत्रण में रखा जा सकता है--इससे पहले कि वह हृदय पर प्रभाव डाल सके।

पलमोनरी (फुफ्फुसीय) हृदय रोग बहुत पुरानी ब्रौंकाइटिस, दमा तथा फेफड़ों के अन्य संक्रमणों के फलस्वरूप होता है। यदि इन रोगों का यथष्ट एवं प्रभावकारी उपचार किया जाय तो इस कारण से होने वाला हृदय रोग रोका जा सकता है।

आज हृदय रोगों की रोकथाम कोरी नेक आशा नहीं वल्कि वास्तविक है। हृदय रोगों पर विजय प्राप्त करने तथा मानव को अधिक उत्तम, अधिक स्वस्थ और दीर्घ जीवन प्रदान करने हेतु चिकित्सकों तथा जनसाधारण को साथ मिलकर कार्य करना चाहिए।

अत्यधिक धूम्रपान से हृदय रोगों का खतरा दुगुना-तिगुना बढ़ जाता है

मोटापा, शारीरिक क्रियाहीनता और मानसिक तनावों से भी हृदय रोगों का खतरा बढ़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयवाहिका रोगों की रोकथाम युवा वर्ग की आदतें

डा. जैड. फैजफर
(विश्व स्वास्थ्य संगठन के हृदयवाहिका रोग यूनिट के चीफ)

बहुत-से लोग यह समझते हैं कि हृदय-वाहिका रोग मध्यम व बुढ़ापे की आयु में ही होते हैं। यह बात दो कारणों से गलत है। यह रोग बच्चों को भी होता है। आज के संसार में अन्य समस्याओं की तरह कई हृदयवाहिका रोग अल्पावस्था में ही शुरू हो जाते हैं। इनमें अनेक रोग जन्मजात होते हैं। बच्चों में डिप्थीरिया जैसे सामान्य संक्रमण रोग के साथ-साथ भीषण हृदय रोग हो जाता है। ऐसा महामारी के समय में होता है।

रूमेटिक हृदय रोग की जड़ें बच्चों के स्ट्रैप्टोकाकसी खराब गले में होती है। कुछ गरम व मध्यम गरम देशों में, विशेषत: भीड़-भाड़ वाले तथा सफाई की कमी वाले इलाकों में, बच्चों व युवा वर्ग में रूमेटिक हृदय रोग बहुत होता है। इन देशों में विभिन्न प्रकार के हृदय रोग, जैसे वामास हृदय रोग, बचपन में ही शुरू हो जाते हैं और कभी-कभी वालिग होने से पहले ही अपरावर्ती दिल के दौरे के शिकार हो जाते हैं।

हृदय के क्रियात्मक दोष––जैसे हृद्-विक्षिप्ति––यदाकदा बच्चों व किशोरों में होते हैं। यदि यह गलती से हृदय रोग मान लिया जाय तो इसका डर जीवन-भर रहता है। विक्षिप्ति सामान्यत: बच्चे की अतिसंवेदन-शीलता में प्रकट होती है और इसके साथ-साथ परिवार में विक्षिप्त वातावरण रहता है।

अब इस आशय के प्रमाण अधिक मात्रा में मिल रहे हैं कि 'मध्यम आयु' के हृदय-दोषों की जड़ें भी बचपन में होती हैं। उदाहरणार्थ, यह बात अतिरिक्त दाब के बारे में सच है, जिसके साथ वृक्कीय–गुरदे के–(रीनल) रोग भी हो जाते हैं। इनमें गरम देशों में त्वचा के संक्रमण से उत्पन्न स्तवक-वृक्कशोथ जैसे रोग हैं।

कारोनरी हृदय रोग वर्तमान उद्योग-प्रधान समाज की देन हैं। ये रोग बचपन से अस्वास्थ्यकर आदतों के कारण हो सकते हैं। इस विश्वास के अनेक कारण हैं। इस रोग के कारण बहुत अधिक संख्या में युवा वर्ग के व्यक्ति मरते हैं। जिन देशों में कारोनरी रोग अधिक होते हैं, उनके बच्चों में रक्त कॉलेस्ट्राल भी ज्यादा पाया जाता है। इन आदतों में ज्यादा खाना, विशेषत: चिकनाई वाले पदार्थ तथा विशुद्ध कार्बोहाइड्रेट का भोजन करना, बैठे रहना तथा धूम्रपान करना शामिल है।

बच्चों व किशोरों का सामाजिक वाता-वरण भी ऐसा होता है जिससे आधुनिक

कारोनरी हृदय रोग आधुनिक उद्योग-प्रधान समाज की देन हैं
ये रोग बचपन से अस्वास्थ्यकर आदतों के कारण हो सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का अशान्त युवक स्पष्टतः हमारी सभ्यता की 'सफलताओं' से पीड़ित है

समाज में वड़ी आयु में हृदय रोग हो जाता है। दैनिक जीवन की गति ऐसी हो जाती है कि आदमी को मौत का शिकार होना पड़ता है। उदाहरणार्थ, वहुत-से वच्चों को माता-पिता की ओर से स्वास्थ्य-सुरक्षा नहीं मिलती और वाद में ऐसे ही बच्चों को रोग हो जाते हैं।

इनमें से कुछ परिस्थितियों पर नियंत्रण मुश्किल है, अन्य पर आसानी से नियंत्रण हो जाता है, यद्यपि जीवन की आदतों में परिवर्तन करने में किसी ओषधि से रोग के लक्षणों को दूर करने की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करने पड़ते हैं।

स्कूलों में बच्चों की स्वास्थ्य परीक्षा तथा बच्चों व माता-पिता की शिक्षा से रोग के प्रति जागरूकता वढ़ती है। फिर भी रोगों के कारणों की खोज पर वल दिया जाना चाहिए और बच्चों व किशोरों का वातावरण स्वस्थ रखना चाहिए। बचपन से ही जितनी स्वस्थ आदतें हों, उतना अच्छा।

वच्चे स्कूल में बैठते हैं, इसलिए उनके लिए शारीरिक शिक्षा बहुत जरूरी है। उन्हें खूब खेलना चाहिए। इसके अलावा, युवा खिलाड़ी धूम्रपान के प्रति आकर्षित नहीं होता और न हर समय कार में यात्रा करना चाहता है। वह अपने युवा जीवन के लिए अधिक अच्छा स्वास्थ्य ले जाता है और इसलिए वह अनुशिक्षित कोमल व्यक्ति से अधिक लम्बा जीवन जी सकता है।

आज का अशांत युवक स्पष्टतः हमारी सभ्यता की 'सफलताओं' से पीड़ित है। इसलिए हृदयवाहिका रोग का बोझ उस समय तक नहीं उठ सकता जब तक कि समाज की परिस्थिति का संतुलन नहीं लौटता और अपने वातावरण के प्रति मनुष्य का तालमेल नहीं होता।

बचपन की आदतें वहुधा जीवन-पर्यन्त रहती हैं।

(विश्व स्वास्थ्य संगठन के सौजन्य से)

दिल की बातें

हमारा दिल चौबीस घंटों में एक लाख से अधिक बार धड़कता है और प्रत्येक धड़कन में लगभग १४० मिलिलीटर अर्थात् एक दिन-रात में लगभग १४,००० लीटर रुधिर पम्प करता है। एक औसत मनुष्य के शरीर में लगभग ६-७ लीटर रुधिर होता है—इसका अर्थ यह हुआ कि रुधिर को हमारे शरीर में बड़ी तेजी से चक्कर लगाना पड़ता है।

दिल की कड़ी मेहनत का अन्दाज इस तरह लग सकता है :

दिन भर में दिल जितना श्रम करता है उससे एक ६० किग्रा वजन के मनुष्य को हवा में ३५० मीटर ऊपर उठाया जा सकता है।

७० वर्ष की आयु वाले मनुष्य के दिल ने लगभग ३५ करोड़ लीटर रुधिर पम्प किया है। इसमें उसने जितना श्रम किया है उससे १० टन का वजन १६ किलोमीटर ऊंचा उठाया जा सकता है।

दो दिल मिलकर जितना श्रम करते हैं उससे एक ट्रक दो वर्ष में पृथ्वी का चक्कर लगा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे शरीर में खनिज: सन्तुलन में गड़बड़ी

डा. आर. मसीरोनी

(हृदयवाहिका रोग यूनिट, विश्व स्वास्थ्य संगठन)

इस शताब्दी के आरंभ में हृदयवाहिका रोगों से ज्यादा लोग पीड़ित नहीं होते थे, लेकिन अब अत्यधिक उद्योग-प्रधान देशों में उनके कारण सबसे अधिक मौतें होती हैं, अनुमानतः सभी मौतों में ५० प्रतिशत। गत कुछ दशकों से कोरोनरी हृदय रोगों से मृत्यु-दर तेजी से बढ़ रही है। फिर भी औद्योगिक सभ्यता से अपेक्षाकृत दूर के लोगों में यह रोग नहीं के बराबर है। विकासशील देशों में ये रोग बीच के दर्जे में हैं, लेकिन हृदयवाहिका संबंधी मृत्यु-दरें वहां भी बढ़ रही हैं।

खान-पान की आदतों, रक्त-वसा स्तरों, घटती शारीरिक हरकत, आनुवंशिकी कारण, धूम्रपान, मनोसामाजिक परेशानी और अन्य कारणों से इन भौगोलिक भिन्नताओं और चेतावनी वाले रुखों को स्पष्ट करने के प्रयत्नों के अभी कोई परिणाम नहीं निकले हैं। कोरोनरी हृदय रोगों के कारण और रोगजनन अभी अच्छी तरह नहीं मालूम, लेकिन हम यह जानते हैं कि अनेक पूर्ववृत्ति बातें इनका कारण बनती हैं।

'चिह्नित' तत्त्व

कोरोनरी हृदय रोगों से मृत्यु-दरें जीवन स्तरों के अंकों और टेक्नोलाजीकल विकास के साथ-साथ बढ़ रही हैं। दूसरे शब्दों में, जीवन-स्तर जितना 'अच्छा' होता है, उतनी अधिक मौतें हृदय रोगों से होती हैं। हाल की खोजों से तकनीकी विकास से हृदयवाहिका रोगों के संबंधों पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। खोज का ऐसा ही एक क्षेत्र तथाकथित 'चिह्नित तत्व' हैं, अर्थात शरीर के टिशू में बहुत थोड़ी मात्रा में विद्यमान खनिज। यदि उनमें से कोई भी खनिज हृदय और रक्त प्रसार पर असर डालता है, जैसा कि वे शरीर के अन्य अनेक कामों पर करते हैं तो यह आशा करना तर्कसंगत होगा कि वातावरण के औद्योगिक या अन्य किसी कृत्रिम हेरफेर से उनके प्राकृतिक संतुलन में गड़बड़ी का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

चिह्नित तत्त्व क्या हैं? पृथ्वी की पपड़ी में अर्थात हमारे सारे भू-रासायनिक वातावरण में ९० से अधिक तत्त्व हैं। उनमें से केवल ११ तत्त्व हमारे शरीर में पर्याप्त मात्रा में होते हैं—आक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कैलसियम, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, सोडियम, क्लोरीन, मैगनेशियम। इन्हें इसलिए 'बड़े' तत्त्व कहा जाता है। इनके जैविक प्रभाव मालूम हैं। अनेक और बहुत थोड़ी मात्रा में होते हैं (शरीर के वजन के ०·१ प्रतिशत मात्रा में) और इस लिए इन्हें 'चिह्नित' तत्त्व कहते हैं। इनमें से सात या आठ—कोबाल्ट, तांबा, आयोडीन, लोहा, मैंगनीज, मौलिबडीनम, जस्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संभवत: सेलेनियम––मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं क्योंकि इनका संबंध शरीर की वृद्धि से है। ये सांस, ग्रंथिकार्यों और अन्य शारीरिक कार्यों के लिए भी जरूरी हैं। अन्य तत्त्वों के लिए जैविक उपयोगिता मालूम नहीं है। अनेक को केवल मिलावट के रूप में देखा जा सकता है। यह संभव है कि कुछ चिह्नित तत्त्व हृदय और रक्त प्रसार के कार्य में महत्त्वपूर्ण योग देते हों। मसलन इनमें से कुछ तत्त्व हृदय कोशिकाओं की संकुचनशीलता के नियन्त्रण, वाहिका-दीवारों के लचीलेपन, रक्तदान संचालन केन्द्रों, वसाओं व शर्कराओं के चयापचय आदि के लिए जरूरी हो सकते हैं। दूसरी ओर यह भी संभव है कि दूषित तत्त्व जहर का काम देते हों, अर्थात वे लाभदायक तत्त्वों के काम में वाधा डालते हों, या अंगों के ठीक से काम करने में परिवर्तन कर देते हों।

वातावरण के अनुकूल बनाना

हजारों साल वाद आदमी प्राकृतिक वातावरण और संतुलन के अनुकूल हो गया है। वातावरण के प्रति यह संबंध चट्टानों से शुरू होता है, जो खनिजों के मुख्य स्रोत हैं। चट्टानों से खनिज मिट्टी, पानी, पौधों, पशुओं और आदमियों में जाते हैं। कुछ दशक पहले का प्राकृतिक संतुलन स्वयं आदमी ने कहीं विगाड़ दिया है। औद्योगिक दृष्टि से विकसित तथा कोरोनरी के प्रतिसंवेदनशील देशों में, मिट्टी, पानी व हवा विभिन्न कृषि कार्यों, जैसे सिंचाई व खाद के उपयोग, खाद्यान्न में मिलाये जाने वाले पदार्थों और उनके बनाने, जल उपचार के द्वारा, जैसे घरेलू कामकाज के लिए धातु अथवा प्लास्टिक पाइपों में जल-वितरण से प्राकृतिक संतुलन में परिवर्तन आ गये होंगे, और फलस्वरूप हृदयवाहिका तंत्र पर खराब असर पड़ा हो। ये केवल सैद्धान्तिक बातें हैं, लेकिन इनके सच होने के भी कुछ प्रमाण उपलब्ध हैं।

सारी कहानी १९५७ में शुरू होती है जब एक जापानी वैज्ञानिक ने यह पाया कि जापान के उन देशों में जहां नदी का पानी अधिक अम्लीय था वहां रक्ताघात अधिक होता था और जहां पानी कम अम्लीय था, वहां यह रोग कम था।

सख्त पानी : नरम पानी

इस प्रेक्षण के बाद अमरीका में किये गये अध्ययन से यह मालूम हुआ कि जिन राज्यों में नरम पानी (कैलसियम व मैगनेशियम लवणों की मात्रा कम) दिया जाता था वहां सख्त पानी वाले इलाकों की अपेक्षा हृदयवाहिका रोगों से मृत्यु-दर अधिक थी। ऐसी ही स्थिति इंगलैंड, फिनलैंड, कनाडा, स्वीडन, नीदरलैंड व आयरलैंड में पायी गयी। जिन क्षेत्रों में पानी––घर का पानी ही नहीं, वल्कि कुओं, जलाशयों और नदियों का पानी––नरम था, वहां किसी न किसी प्रकार के हृदयवाहिका रोग से मृत्यु-दर अधिक पायी गयी। अन्य रोगों तथा मृत्यु के अन्य कारणों में ऐसा संबंध नहीं पाया गया।

इतने देशों में इस प्रकार के संबंध की पुष्टि होने से यह नतीजा निकलता है कि पानी में कतिपय तत्त्वों या इनसे संबंधित तत्त्वों का प्रभाव हृदयवाहिका तंत्र पर पड़ता है।

एक और प्रारंभिक रिपोर्ट से इस सिद्धांत की पुष्टि होती है। इंगलैंड और वेल्स में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक क्षेत्रों में अध्ययन किया गया क्योंकि उनकी जल सप्लाई की किस्म अनेक वर्ष पहले बदल गयी थी, अर्थात कुछ नगरों में पानी नरम हो गया था, कुछ में सख्त। जहां पानी नरम हो गया था वहां हृदयवाहिका रोगों से मृत्यु-दरों का प्रतिकूल रुख पाया गया और जिन नगरों में पानी सख्त हो गया वहां अनुकूल रुख था।

सख्त पानी के लाभकारी प्रभाव या मुलायम पानी के नुकसानदायक प्रभाव के कारण अभी ज्ञात नहीं हैं। फिर भी यह बात महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः कुछ देशों में जन स्वास्थ्य अधिकारियों ने पानी को मुलायम बनाने की विधियां रोकने की बात सोची है।

कुछ अधिक सख्त पानी से कुछ खराब प्रभाव पड़ते हैं, जैसे पाइपों, बायलरों और रेडियेटरों में पपड़ी जम जाना। सख्त पानी से कपड़े धोने के लिए अधिक साबुन की जरूरत पड़ती है। इन व्यापारिक कारणों से बहुत अधिक सख्त पानी को मुलायम बनाया जाता है, जिससे यह औद्योगिक व घरेलू कामकाज के लिए उपयुक्त हो सके। खर्च अधिक होने के कारण पानी को मुलायम बनाने का काम केवल अत्यधिक औद्योगिक देशों में किया जाता है। इन विधियों में अधिकांश कैलसियम व मैगनेशियम लवण तथा कुछ खनिज भी दूर हो जाते हैं। यह अभी नहीं मालूम कि पीने के लिए जीवन-भर नरम पानी पीने से स्वास्थ्य पर खराब

नाइजीरिया के लागोस विश्वविद्यालय अस्पताल में पोस्ट-ग्रेजुएट डाक्टरों को मल्टी-चैनल स्टेथेस्कोप की सहायता से हृदय-परीक्षण का प्रशिक्षण दिया जा रहा है

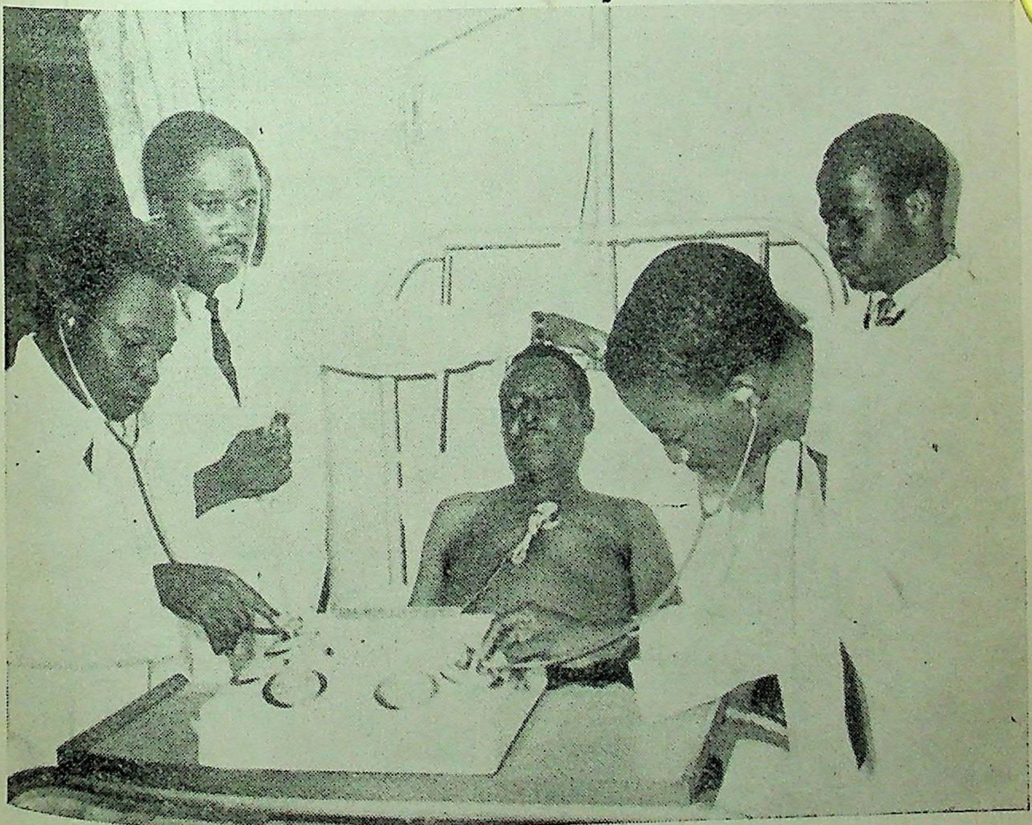

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असर पड़ता है। बहुत अधिक मुलायम पानी का प्रभाव जंग लगाने वाला होता है। यह पाइपों से कैडमियम व सीसा जैसे नुकसानदायक तत्त्व हटा सकता है। ये तत्त्व फिर पीने के पानी के अंग बन जाते हैं।

कुछ विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि कैडमियम से अतिरिक्त दाब हो सकता है और वस्तुतः यह मालूम हुआ था कि गुरदों में कैडमियम जमा होने से अतिरिक्त दाब बढ़ता है। कुछ देश औद्योगिक गतिविधियों से कैडमियम के द्वारा प्रदूषण बढ़ने से चिंतित हैं।

हृदय रोगों सम्बन्धी सर्वेक्षण एवं चिकित्सा के दो चल चिकित्सालय फिनलैंड के देहातों में कार्यरत हैं। ये प्रतिदिन १०० व्यक्तियों की पूर्ण जांच कर सकते हैं। ग्रामीणों को विभिन्न खाद्य पदार्थों के प्लास्टिक मॉडल दिखाकर उनके भोजन के विषय में पूछताछ की जाती है। इस तरीके से गलतफहमी होने की गुंजाइश नहीं रहती

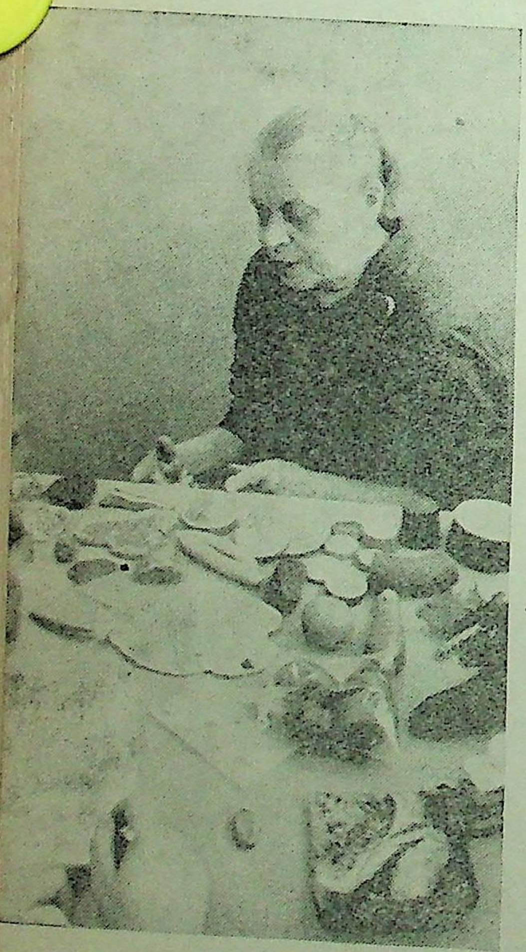

एक वैकल्पिक स्पष्टीकरण यह है कि नरम पानी में लाभकारी खनिज नहीं होते होंगे, जो सख्त पानी में होते हैं।

'जल तत्त्व' के बारे में इतना अधिक भावनात्मक होने से पहले एक बात सावधानी से कहना जरूरी है। अनेक समृद्धिशाली समाजों में जितना पानी दिया जाता है, वह बहुत कम होता है। हमारा द्रव संतुलन अन्य पेय—जैसे दूध, शराब, सोडा, शीतल पेय, फलों के रस, काफी व चाय तथा सब्जियों, फलों व अन्य खाद्यान्न में मौजूद जल—से बना रहता है। खाना पकाने में पानी बहुत माता में स्तेमाल होता है और इस प्रकार खनिज पकाये जाने वाले भोजन पर जमा हो जाते हैं या उनसे निकलते हैं। इन सब पेय और खाद्यान्न में खनिज की माता नल या कुएं के पानी से बहुत भिन्न होती है और वास्तव में हम जो पानी पीते हैं, उनसे कहीं अधिक खनिज हमारे शरीर में पहुंचते हैं।

इसलिए इस बात का कोई कारण नहीं जान पड़ता कि पीने का जल ही हृदय-वाहिका तंत्र में महत्त्वपूर्ण योग दे, अर्थात यदि सख्त है तो लाभदायक और नरम है तो नुकसानदायक। फिर भी ऊपर जो परिणाम दिये गये हैं, वे इस प्रकार के रुख की ओर संकेत करते हैं।

इसके अलावा, मुलायम पानी का हृदय-वाहिका संबंधी मृत्यु-दरों से संबंध पीने के पानी से ही नहीं बल्कि नदी के जल से भी पाया गया है जो सामान्यतः पीने के काम नहीं आता।

इससे संकेत मिलता है कि हमारे रोगों का एक बड़ा कारण पानी नहीं बल्कि आम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वातावरण है, अर्थात चट्टानें व मिट्टी, जिनसे होकर पानी आता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूविज्ञान कारक

यह बात हमें एक और समस्या पर ले आती है। यह है भूविज्ञान कारकों का प्रभाव। सभी खनिजों का प्राथमिक स्रोत चट्टानें हैं। चट्टानों में जो खनिज होते हैं, उनका असर पानी तथा जमीन की ऊपरी सतह पर और अंत में पौधों और इन पौधों को खाने वाले पशुओं पर पड़ता है। भूतत्त्व वातावरण में खनिज की कमी या बहुलता से संभवतः आदमी द्वारा लिये जाने वाले कतिपय खनिजों में भी घट-बढ़ हो सकती है। यह भी अनिश्चित सिद्धांत है, लेकिन मानव स्वास्थ्य पर कतिपय भू-रासायनिक वातावरण के कुप्रभाव के प्रमाण उपलब्ध हैं। अमरीका में हुए प्रारंभिक प्रेक्षणों से यह मालूम हुआ कि उन क्षेत्रों में हृदय-वाहिका रोगों से मृत्यु-दर अधिक है, जहां मिट्टी में चिह्नित तत्त्व कम हैं, जबकि उन क्षेत्रों में मृत्यु-दर कम है जिनके नीचे ऐसी चट्टानें हैं, जो टूट-फूट से मिट्टी को चिह्नित तत्त्वों की अच्छी मात्रा देती रहती हैं।

गेटेबर्ग (जर्मनी) के अस्पताल में हृदय रोगियों की फिजियोथेरापिस्ट द्वारा चिकित्सा के उपरान्त देखभाल

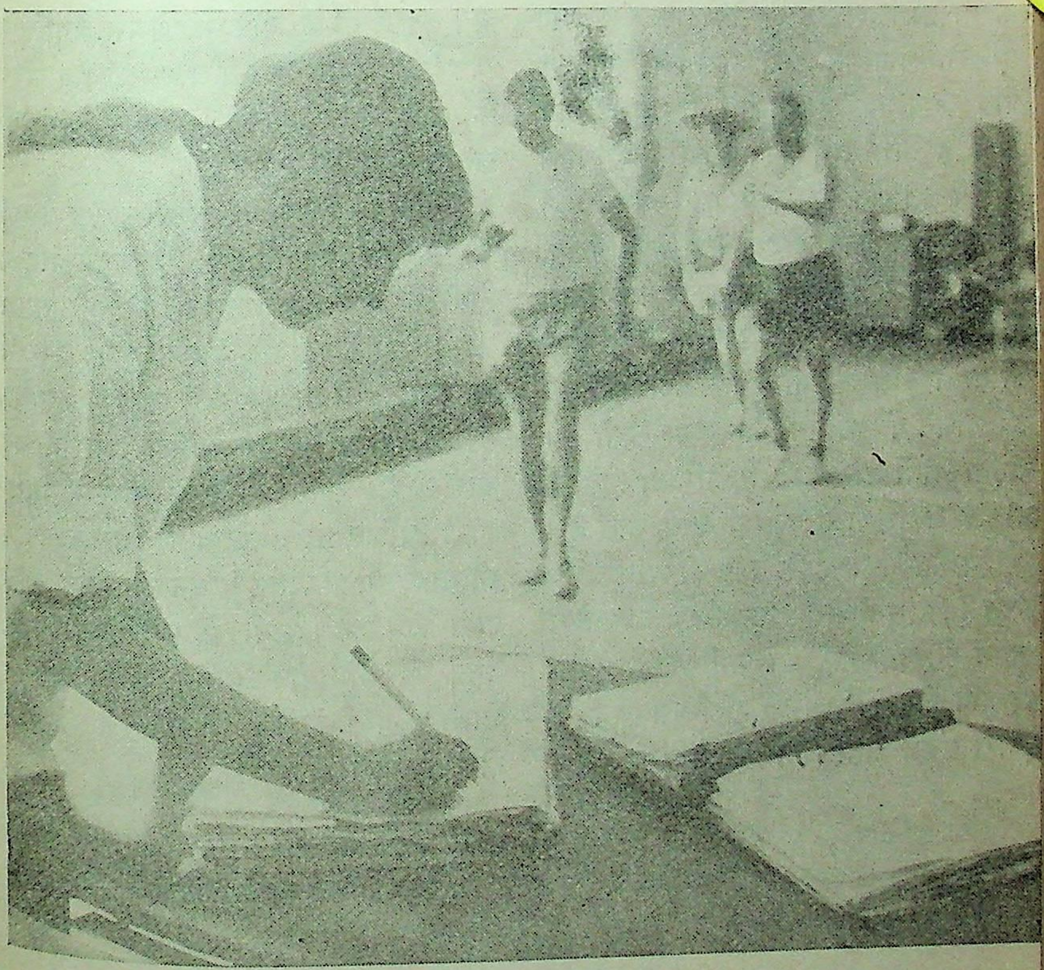

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मानव स्वास्थ्य पर वातावरणीय प्रभाव की समझ से निश्चित रूप से हृदयवाहिका रोगों के प्राकृतिक इतिहास की भी समझ बढ़ेगी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य प्रारंभिक प्रेक्षणों से मालूम हुआ है कि जिन देशों में हृदयवाहिका रोगों के कारण मृत्यु-दर अधिक है, वहां अधिक पुरानी चट्टानें होती हैं और वास्तव में पुरानी चट्टानें नरम पानी पैदा करती हैं क्योंकि उनमें अपेक्षाकृत अघुलनशील खनिज होते हैं और उनको ढकने वाली मिट्टी में बहुत कम खनिज हो सकते हैं।

हमारे खाद्यान्न और टिशू में एक तत्त्व क्रोमियम होता है। क्रोमियम वसा के निर्माण और एथिरोस्क्लेरोसिस के विरुद्ध पार्ट अदा करता है। उत्तरी अमरीका के जो लोग ऐथिरोस्क्लेरोसिस और कोरोनरी रोगों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, वे आयु बढ़ने के साथ-साथ अपने टिशू से क्रोमियम खो देते हैं। अंत में क्रोमियम समाप्त हो जाता है। अफ्रीका और एशिया के भागों में, जहां इन हृदयवाहिका रोगों की मात्रा कम है, लोगों के शरीर में जीवनभर क्रोमियम की मात्रा अधिक रहती है। उत्तरी अमरीका के भोजन में क्रोमियम की कमी रहती है। बढ़िया चीनी और आटे में क्रोमियम होता है और ये समृद्धिशाली देशों में खाये जाते हैं।

ये सब प्रमाण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भूतत्त्वीय वातावरण (चाहे वे चट्टानें हों, चाहे मिट्टी या पानी) तथा हृदय-वाहिका रोगों में चिह्नित तत्त्व-असंतुलन के द्वारा संबंध होता है। ये सब महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं। इनमें गहराई से जाने की जरूरत है और ये काम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए। विश्व स्वास्थ्य संगठन इस दिशा में कार्य कर रहा है।

तथाकथित 'प्राचीन' लोगों के समूह के अध्ययन से अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। ये लोग अब भी प्राकृतिक वातावरण के संपर्क में रहते हैं। ये समूह औद्योगिक दूषण तथा हमारी औद्योगिक सभ्यता की अन्य बातों से मुक्त हैं। वे स्थानीय भोजन करते हैं और प्रकृति में जैसा पानी मिलता है, पीते हैं। इन लोगों के बारे में अभी अनुसंधान जरूरी है क्योंकि फिर ये लोग औद्योगीकरण के साथ बदल जायेंगे। इनका अभी से जीवन बदल भी रहा है।

मानव स्वास्थ्य पर वातावरणीय प्रभाव की समझ से निश्चित रूप से हृदयवाहिका रोगों के प्राकृतिक इतिहास की भी समझ बढ़ेगी। इससे यह भी मालूम होगा कि ये रोग कुछ देशों में कम और कुछ में ज्यादा, कुछ सभ्यताओं में भिन्न-भिन्न रूप में बढ़ क्यों रहे हैं। हो सकता है कि स्वास्थ्य अधिकारी चिह्नित तत्त्व वातावरण और खानपान की आदतों में परिवर्तन से इन रोगों पर काबू पाया जा सके। पानी में क्लोरीन मिलाने, नमक में आयोडीन मिलाने और कतिपय खाद्यान्न में विटामिन मिलाने से स्थिति ठीक हो सकती है।

(लेख तथा चित्र :
विश्व स्वास्थ्य संगठन के सौजन्य से)

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल का दौरा

प्रो. फकीरचन्द शुक्ला

आजकल दिल का दौरा एक साधारण-सी बात है। प्रायः ही सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति सुवह घर से खाना खाकर चला था, रास्ते में जाने क्या हुआ कि गिर पड़ा और देखते ही देखते चल वसा; या अमुक व्यक्ति ने चाय का कप मुंह से लगाया ही था कि एकदम कप प्लेट हाथ से छूटकर दूर जा गिरे और आदमी एक तरफ लुढ़क गया। दोनों घटनाओं में वताया गया कि वह दिल का दौरा (हार्ट अटैक) था।

यद्यपि हमारे देश में दिल के दौरे से मरने वालों की कमी नहीं; फिर भी अन्य देशों के मुकावले इनकी संख्या कम है। अनुमान है कि अमरीका में प्रतिवर्ष ५० लाख के करीव व्यक्तियों की मृत्यु इसी रोग के कारण होती है।

हृदय हमारे शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह अंग एक पल भी आराम नहीं कर सकता। जीवन के आरम्भ से अन्त तक इसे काम ही काम करना पड़ता है। एक क्षणांश के लिए भी इसके आराम का अर्थ होगा चिरनिद्रा। प्रतिदिन ५ से १० टन रक्त को रक्तवाहिनियों द्वारा शरीर के समस्त अंगों तक पहुंचाना तथा, वहां से आये हुए दूषित रक्त को फेफड़ों तक भेजना इसी का काम है। जो धमनियां हृदय को रक्त पहुंचाती हैं उन्हें कोरोनरी धमनियां कहते हैं। यदि कभी अधिक जोर लगाने के लिए हृदय को आवश्यक माला में रक्त न मिले तो अवश्य ही हृदय रोग पड़ जाता है। कोरोनरी धमनी रोग उसे कहते हैं जिसमें धमनियों के अन्दर कुछ पदार्थ जम जायें। इसी प्रकार के दूसरे रोग में धमनियों के अंदर को सतहों पर चिकनाईयुक्त पदार्थ जमने लगते हैं। इन अवस्थाओं में हृदय को आवश्यकतानुसार रक्त नहीं पहुंचता और कोरोनरी धमनी रोग हो जाता है।

हृदय रोग ऐसे लोगों में अधिक पाया जाता है जो दिन-रात शारीरिक और मानसिक परिश्रम करते तो हैं परन्तु आराम पर ध्यान नहीं देते। निरंतर चिन्ताओं से घिरे व्यक्ति को भी हृदय रोग की पूरी आशंका रहती है।

इन सब रोगों का हमारे भोजन से भी सीधा संबंध है। किस आदमी को कितना और कैसा भोजन किस समय पर करना चाहिए, यह उसकी आयु और दिनचर्या पर निर्भर है। संतुलित भोजन् में प्रोटीन, कार्बोज, वसा, विटामिन, खनिज तत्त्वों का होना आवश्यक है। एक दफ्तरी बाबू की अपेक्षा शारीरिक श्रम करने वाले मनुष्य को अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। आवश्यकता से अधिक भोजन करने पर अतिरिक्त चरबी शरीर में संचित होने लगती है और व्यक्ति बेडौल, स्थूलकाय हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंतुलित और अत्यधिक भोजन करके हम अपने लिए बीमारी ही मोल लेते हैं

मोटापे का दिल के दौरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है

शरीर का मोटापा दिल के रोगों को न्योता देता है। पतलापन दिल के रोगों से आम तौर पर सुरक्षित रखता है

मोटापे का दिल के दौरे से घनिष्ठ संबंध है। मोटे आदमी के दिल को पतले आदमी के दिल की अपेक्षा अधिक काम करना पड़ता है और फेफड़ों पर भी अनावश्यक दबाव पड़ता है। वसा की अधिकता से रक्त में 'कोलेस्टेरॉल' नामक द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है। यह भी एक प्रकार की चरबी है जो अल्पांश में तो रक्त में पायी ही जाती है, इसके दुष्प्रभाव से रक्तवाहिनियों की भीतरी सतहें निर्बल पड़ती जाती हैं। इस तरह कोलेस्टेरॉल 'एथिरोस्क्लेरोसिस' नामक रोग को प्रेरित करता है।

आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि अकेला कोलेस्टेरॉल ही हृदय रोग से सम्बन्धित नहीं अपितु बीटा लाइपो प्रोटीन भी संबंधित है। हृदय रोग में कोलेस्टेरॉल के अलावा बीटा लाइपो प्रोटीन भी रक्त में बढ़ जाती है। आवश्यकता से अधिक भोजन करने पर तथा अधिक कार्बोज युक्त भोजन लेने से भी कोलेस्टेरॉल की मात्रा बढ़ जाती हैं।

वसायुक्त भोजन में तीन प्रकार के वसीय अम्ल (फैटी एसिड्स) पाये जाते हैं: संतृप्त, असंतृप्त और मध्यवर्ती।

संतृप्त वसीय अम्ल अधिकतर मक्खन, घी, क्रीम, मांस, आदि में पाये जाते हैं तथा असंतृप्त वसीय अम्ल वानस्पतिक तेलों, मकई, सोयाबीन के बीज, बिनौले व मछली के तेल में पाये जाते हैं। मध्यवर्ती वसीय अम्ल जैतून के तेल में पाया जाता है

हृदय रोग से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उचित मात्रा में ऐसा संतुलित भोजन लें जिससे शरीर को हानि न पहुंचे। उच्च रक्त दाब के रोगियों को भोजन में नमक की अधिकता हानिकारक रहती है।

मिठाइयां तथा तली हुई वस्तुओं का सेवन कम से कम करना चाहिए। दूध की अपेक्षा दही अधिक लाभप्रद है। भोजन के अतिरिक्त थोड़ी कसरत का भी अभ्यास रखना चाहिए। भूख से अधिक तो कभी खाना ही न चाहिए असंतुलित और अत्यधिक भोजन करके हम अपने लिए बीमारी ही मोल लेते हैं।

हृदय रोग से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उचित मात्रा में ऐसा संतुलित भोजन लें जिससे शरीर को हानि न पहुंचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शोरगुल

ए. के. सिन्हा

आज से साठ वर्ष पूर्व नोबेल पुरस्कार विजेता जीवाणुशास्त्री रॉबर्ट कॉक ने यह भविष्यवाणी की थी कि 'एक दिन ऐसा आयेगा जब मनुष्य को अपने स्वास्थ्य के दुष्टतम शत्रु शोर से लड़ना होगा।'

प्रतीत होता है, वह दिन शायद अब दूर नहीं। अभी तक केवल धूल, धुआं और रसायनों द्वारा ही फैल रहे प्रदूषणों की ओर ध्यान दिया जाता रहा है, किन्तु अब बढ़ता हुआ शोरगुल भी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एक प्रमुख प्रदूषक बनता जा रहा है। शोर की यह समस्या सर्वदेशीय है और औद्योगीकरण से बढ़ रही है।

आदि मानव के लिए भी शोर प्रकृति की ओर से खतरे का संकेत हुआ करता था और मानव पर उसकी प्रतिक्रिया स्वतः होती थी। उदाहरणार्थ, शेर की गर्जन सावधान करती थी, जिस पर मनुष्य का दिलोदिमाग तत्क्षण प्रतिक्रिया करता था, जैसे—दिल की धड़कन बढ़ना, श्वास तीव्र होना और रक्त में शर्करा वृद्धि होना। तात्कालिक परिणामस्वरूप मनुष्य लड़ने या भागने के लिए तैयार हो जाता था। आज हम भी वैसी ही प्रतिक्रियाएं करते हैं।

शोर क्या है ?

'शोर वह ध्वनि है जिसमें सुखद संगीतमय गुण नहीं होता तथा जो तीव्र कर्कश तथा बेसुरी होती है।'

शोर वातावरण में ध्वनि तरंगें उत्पन्न करता है जो दोलनदर्शी (ओसिलोस्कोप) से देखने पर असमान तथा खुरदरी दिखायी देती हैं। इसके विपरीत संगीत स्वर लहरियों की ध्वनि तरंगें मृदु, सम तथा प्रवाहपूर्ण होती हैं।

तीव्रता का मापन

शोर की तीव्रता का माप डेसिबेल में किया जाता है। बेल एक मापन इकाई है जो ग्राहम बेल (टेलिफोन का आविष्कारक) के नाम पर रखी गयी है। एक डेसिबेल एक बेल का दसवां भाग होता है। सिद्धान्ततः तो सुनने की न्यूनतम सीमा रेखा शून्य डेसिबेल होती है किन्तु वह अवस्था केवल प्रयोगशाला में ही प्राप्त की जा सकती है। जिसे हम 'खामोशी' या नीरवता कहते हैं, वह सामान्यतः २५ डेसिबेल के लगभग होती है। प्रायः १२० डेसिबेल का शोर कष्टदायक होता है, किन्तु यह अधिकांश ध्वनि के प्रकार तथा उच्चावृत्ति स्वराघात पर निर्भर करता है। १४० डेसिबेल पर कुछ मिनटों में और १५० डेसिबेल पर कुछ सेकण्डों में ही अत्यधिक पीड़ा तथा अस्थायी बहरापन हो जाता है।

डेसिबेल माप लघुगणकीय होता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ध्वनियों का डेसिबेल में माप

अर्थात् ६० डेसिबेल की ध्वनि ५० डेसिबेल की ध्वनि से दसगुनी, ४० डेसिबेल से सौगुनी, और ३० डेसिबेल से एक हजार गुनी अधिक तीव्र होती है। सन्निकट में उड़ान शुरू करता हुआ जेट विमान, जिसकी ध्वनि १२० डेसिबेल होती है, एक नगर की सामान्य ५० डेसिबेल की ध्वनि से एक अरब गुना तीव्रतर शोर उत्पन्न करता है।

तीव्रता की सीमा

१९६९ की जुलाई में सं. रा. अमरीका की सरकार ने काम के समय के डेसिबेल-स्तर की एक सीमा निर्धारित कर दी थी। उस सीमा से अधिक आवृत्ति की ध्वनि स्थायी रूप से हानिकारक है। अत्यधिक शोर भरे कारखाने में १०० डेसिबेल की ध्वनि के बीच १५ वर्ष तक निरन्तर काम करने वालों ने अपनी सामान्य सुनने की क्षमता एक प्रकार से खो दी थी, क्योंकि उनके सुनने के लिए सामान्य बातचीत जो ६० डेसिबेल की होती है, उसे ७०-७५ डेसिबेल ऊंचा दोहराना पड़ता था। इसी प्रकार आठ घंटे काम करने वालों के लिए ९० डेसिबेल ध्वनि को हानिकारक घोषित किया गया।

अधिक ऊंचे शोर वाले स्थल जैसे निकटस्थ जेट विमान का हवाई अड्डा, जहां जेट विमान का शोर १२० डेसिबेल होता है, स्वास्थ्य के लिए अत्यंत खतरनाक माना गया है। इतने अधिक डेसिबेल की ध्वनि से सामान्य सुनने की शक्ति स्थायी रूप से जाती रहती है।

मधुर अथवा कर्कश ?

किसी भी वस्तु का शोर-स्तर कई बातों पर निर्भर करता है और डेसिबेल कई भिन्न बातों से मापा जाता है। बीच की दूरी, ध्वनि का प्रकार और शक्ति का स्रोत तीनों भिन्न बातें हैं। इसी प्रकार ध्वनि की आवृत्ति तथा उच्च अथवा निम्न स्वर भी पृथक् वस्तुएं हैं। १०० डेसिबेल का एक मन्द हार्न अथवा १००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शोरगुल हमारे जीवन के प्राणमूलक वातावरण को तेजी से दूषित कर रहा है। आर्थिक प्रगति की दौड़ में यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि हमारे वातावरण का यह शत्रु कहीं हमारे ही वश से बाहर न हो जाय

डेसिबेल उत्पन्न करता हुआ सिम्फनी आर्केस्ट्रा का संगीत हानिकारक नहीं होगा किन्तु उतनी ही तीव्रता के एक भोंपू की कर्कश, कर्णवेधी ध्वनि हानिकारक होगी। दूसरे शब्दों में एक आनन्ददायक सिम्फनी आर्केस्ट्रा संगीत उतने ही डेसिबेल पर सुखद होगा जितने पर बेसुरा विषम तथा कर्णकटु आर्केस्ट्रा।

शारीरिक हानियां

शारीरिक हानि इस पर निर्भर करती है कि ऊंचे शोर को हमारे कान कितनी देर तक सुनते रहते हैं। बहरेपन के अतिरिक्त विष-गुल्म, सिरदर्द, विभिन्न उदर-विकार, दमा, हृदय रोग, अनिद्रा तथा मस्तिष्क का असंतुलन आदि व्याधियां ऐसे शोरगुल से सहज उत्पन्न हो जाती हैं।

इनके अतिरिक्त, न्यूयार्क के डा. सैमुअल रोजेन के शब्दों में आकस्मिक, अनावश्यक शोर से आंख की पुतलियां फैलने लगती हैं, त्वचा पीली पड़ जाती है, श्लेष्मल झिल्लियां निचुड़ने लगती है, आंतों में ऐंठन होने लगती है और असहाय रूप से मलमूत्र भी विसर्जित हो जाता है।

हमारे देश में लोग शोर की हानियों के प्रति सजग नहीं हैं। यातायात तथा कारखानों से जितना शोर उठता है वह जन-जीवन के लिए बहुत हानिकारक है। लोग अपने रेडियो, ट्रांजिस्टरों, तथा लाउडस्पीकरों पर रेकार्ड इतने तेज वजाते हैं कि पड़ौसी मरे या जिये

शोरगुल के बीच बातचीत करने में कितना जोर लगाना पड़ता है

इसकी परवा नहीं करते। विवाहों के दिनों में तो बस हद हो जाती है। आजकल के नये ध्वन्यातीत (सुपरसोनिक) वायुयान का शोर तो शरीर की हड्डियों तक को हिला देता है।

इस प्रकार यह शोरगुल हमारे जीवन के प्राणमूलक वातावरण को तेजी से दूषित कर रहा है। आर्थिक प्रगति की दौड़ में यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि हमारे वातावरण का यह शत्रु कहीं हमारे ही वश से बाहर न हो जाय।

वायुयानों के शोर पर नियंत्रण

इंगलैंड अमरीका में वायुयानों के शोर पर नियंत्रण है। वायुयानों के उड़ान भरने तथा उतरने में होने वाले शोर की सीमा निर्धारित है। उड़ान-पटरी के छोर से लगभग ५ किलोमीटर की दूरी पर वायुयान का शोर कितने डेसिबेल होना चाहिए, यह निर्धारित कर दिया गया है। नये प्रकार के साइलेन्सर, ध्वनि-शोषक आदि के द्वारा वायुयानों का शोर घटाने के प्रयास निरन्तर जारी हैं।

बोइंग ७०७ की निर्धारित शोर-सीमा उड़ान भरते समय ११४ डेसिबेल तथा उतरते समय १२० डेसिबेल है। नये बोइंग-७४७ के लिए ये सीमाएं क्रमशः १०७ तथा १०६ हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में एक कानून बनाया जा रहा है जिसके अनुसार न्यूयार्क के हवाई अड्डों पर उतरने वाले सभी विमानों कोशोर-नियंत्रण का पालन करना पड़ेगा। नेशनल ऐकेडमी आव साइन्सेज का प्रस्ताव हैकि न्यूयार्क के कनेडी हवाई अड्डे पर १९७५ तक वायुयानों का शोर आधा (९८ डेसिबेल) कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो आविष्कार

टीका और पेनिसिलिन

सुभाषचन्द्र अग्रवाल

टीके और पेनिसिलिन की खोज की कहानी अत्यन्त रोचक है। इस कहानी के आरम्भिक अंश की जानकारी के लिए हमें आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के इतिहास के पन्ने उलटने पड़ेंगे। ईसा से १५०० वर्ष पूर्व चीनवासी शूकर के मल से घाव को भरा करते थे। वास्तव में घाव शूकर के मल के कारण नहीं बल्कि उस पर उगने वाली एक विशेष फफूंद के कारण ठीक हो जाता था।

पाश्चर ने मार्ग दिखाया

फ्रांसीसी वैज्ञानिक लूई पाश्चर सबसे पहला वैज्ञानिक था जिसने दुनिया को रोगाणुओं का महत्त्व समझाया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वह एक चिकित्सक नहीं, बल्कि एक रसायनज्ञ था। जब उसने अपने अनुसंधान आरम्भ किये तब उसके विचार का विषय रोग नहीं था, फिर भी रोगाणुओं के विरुद्ध अभियान में वह मार्गदर्शक बना।

शताब्दी भर पहले उन जीवाणुओं को लेकर बड़ा विवाद खड़ा हो चुका था जो मांस-रस को रख देने पर उसमें प्रकट होते और उसे खराब कर देते थे। कुछ वैज्ञानिकों का कहना था कि मांस-रस में उपस्थित सूक्ष्म जीव स्वयं सड़ते हुए मांस-रस से पैदा होते हैं, किन्तु लैजरो स्पैलेंजनी नामक इतालवी वैज्ञानिक का निश्चित मत था कि वे हवा में से आते हैं और फिर मांस-रस में बढ़ते रहते हैं। उसने सिद्ध कर दिखाया कि यदि मांस-रस को किसी मुहरबन्द बरतन में रख दिया जाय और फिर उसमें विद्यमान सभी जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए काफी गरम किया जाय तो नये जीवाणु प्रकट नहीं होते। लेकिन फिर भी विवाद यथावत् चलता रहा।

पाश्चर ने स्पैलेंजनी के परीक्षण को दुहराया। किन्तु स्वतोजननवादी वैज्ञानिकों का कथन था कि पाश्चर के फ्लास्क में जीवाणु इसलिए सजीव नहीं हो सकते, क्योंकि उनके लिए वायु की आवश्यकता है और उसने फ्लास्क को मुहरबन्द भी कर रखा है।

इस आक्षेप के निवारण के लिए पाश्चर ने एक ऐसे फ्लास्क में शर्कराघोल को उबाल लिया जिसकी लम्बी गर्दन एक पार्श्व में अंग्रेजी के S अक्षर की तरह टेढ़ी थी। उसने फ्लास्क को कुछ मिनटों तक उबाला और फिर महीनों तक उसे पड़ा रहने दिया। उसमें कोई बैक्टीरिया प्रकट नहीं हुआ। जो नली के सिरे में पड़ते, उनके लिए मोड़ पार करना असम्भव था।

यह पाश्चर की महान सफलता थी। अब उसे विश्वास हो गया कि कुछ जीवाणु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग उत्पन्न करते हैं। यदि अंगूर का रस संसार में सर्वत्र शराब में बदल जाता है, यदि दूध संसार में सब कहीं खट्टा हो जाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि खमीर और बैक्टीरिया हवा में सर्वत्र विद्यमान हैं। अगर ऐसा है तो रोगोत्पादक जीवाणु भी सर्वत्र होने चाहिए।

पाश्चर ने अपने प्रयोगों से उद्योगों को भी सहायता पहुंचायी। उसने जहां एक तरफ शराब निर्माताओं को सिखाया कि शराब को खटास से बचाने के लिए बोतल में भरी हुई शराब को सिर्फ इतना उबालें कि जो बैक्टीरिया उसमें आ पड़े हों वे मर जायें, वहां दूसरी तरफ रेशम निर्माताओं को रेशम को कीड़ों से बचाने के लिए बताया कि किस प्रकार अंडों से बच्चे निकालकर इस रोग का उन्मूलन किया जा सकता है।

पाश्चर की प्रत्येक नयी खोज इस बात को स्पष्ट कर रही थी कि मानव रोग भी जीवाणुओं से उत्पन्न होते हैं।

टीके के आविष्कार ने पेनिसिलिन की खोज का मार्ग प्रशस्त किया

उधर कई चिकित्सकों ने गिल्टी रोग से मरने वाले पशुओं के रक्त में सलाख की शक्ल के नन्हे बैक्टीरिया देखे थे। इन चिकित्सकों का विश्वास था कि जो जीवाणु उन्होंने देखे हैं वही गिल्टी रोग के कारण हैं। जर्मनी के एक छोटे-से देहात के डाक्टर रॉबर्ट कॉक ने गिल्टी रोग से पीड़ित भेड़ों के रक्त का अध्ययन किया। उसने भी ऐसे ही बैक्टीरिया पाये लेकिन स्वस्थ भेड़ों के रक्त में उसे वे दिखायी नहीं दिये। उसे विश्वास हो गया कि इन्हीं बैक्टीरिया से गिल्टी रोग होता है।

कॉक ने आगे परीक्षण करने के लिए एक ऐसी भेड़ के रक्त का एक बिन्दु लिया जो गिल्टी रोग से मरी थी। उसके सूक्ष्मदर्शी से उसमें वही बैक्टीरिया दिखायी दिये। फिर उसने एक चूहे की त्वचा में एक छोटी-सी काट लगायी। लकड़ी की पतली-सी फांस के द्वारा उसने भेड़ के रक्त की बूंद को काट में डाल दिया। शीघ्र ही चूहा मर गया। सूक्ष्मदर्शी से पता चला कि उस चूहे के रक्त में उसी बैक्टीरिया का जमाव था। कॉक ने आगे और परीक्षण किये, उनसे उसे विश्वास हो गया था कि उसने अपनी बात सिद्ध कर दी है।

उसी समय पाश्चर एक अन्य संक्रामक रोग, पक्षियों के हैजे के अध्ययन में लगा हुआ था। उसने फ्लास्क में कीटाणुओं की विशुद्ध बस्तियों का संवर्धन किया। एक दिन की बात है कि उसके दो सहायकों ने भूल से एक चूज़े को ऐसे जीवाणुओं का टीका लगा दिया जो एक फ्लास्क में कई सप्ताह से पड़े थे। उन्हे

संसार को सर्वप्रथम रोगाणुओं का महत्त्व समझाने वाला फ्रांसीसी वैज्ञानिक लूई पाश्चर

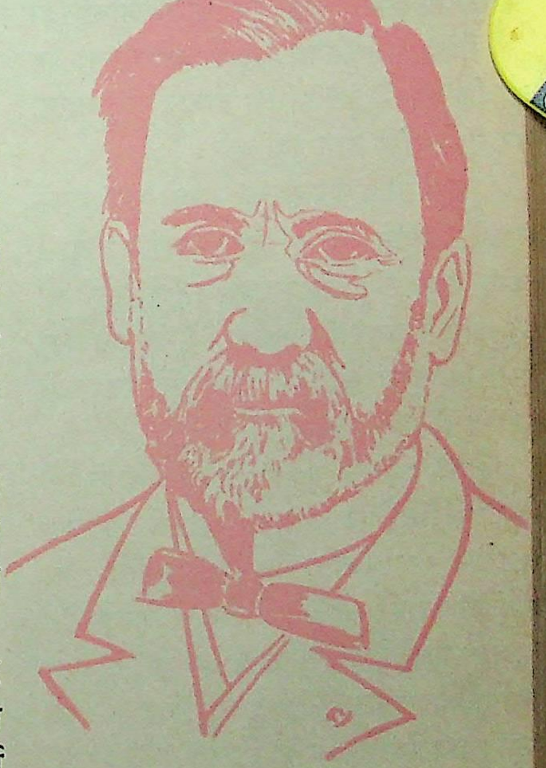

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

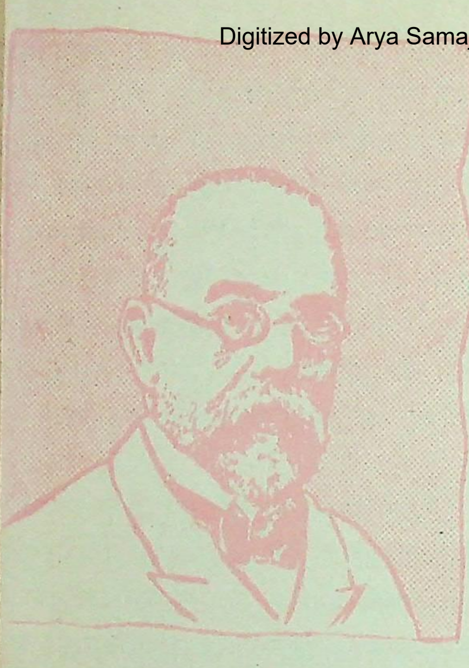

क्षय के रोगाणु 'ट्यूबरकिल बेसिलस' की खोज करने वाला जर्मन डाक्टर रॉबर्ट कॉक

यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चूजा बीमार नहीं हुआ।

उन्होंने कुछ दिनों तक प्रतीक्षा की और फिर उसी चूजे को ताजे जीवाणुओं का टीका लगा दिया। इससे चाहिए तो यह था कि चूजा बहुत अधिक बीमार पड़ जाता, पर ऐसी कोई बात नहीं हुई।

पहले तो वे पाश्चर को अपनी भूल बताने से डरे, उन्होंने सोचा वह नाराज होगा। किन्तु पाश्चर ने जब उनकी कहानी सुनी तो वह खुशी के मारे उछल पड़ा। तभी उसे पता चला कि चूजों को हैजे से बचाने का यही तरीका है।

तभी पाश्चर का ध्यान कॉक के गिल्टी रोग परीक्षणों पर गया और उसने एक लेख प्रकाशित कर चिकित्सकों को सुनाया कि भेड़ों और ढोरों को गिल्टी रोग से गिल्टी रोग के जीवाणुओं के मंदीकृत प्रभेद के टीके से बचाया जा सकता है किन्तु इस बार भी उसे कटु विवाद में उलझना पड़ा। पशु चिकित्सकों ने उसे सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए चुनौती दी। यह परीक्षण पेरिस के बाहर एक क्षेत्र में हुआ।

उसने यूरोप के प्रत्येक भाग के पत्रकारों को आमंत्रित किया। परीक्षण में पचास भेड़ों का उपयोग किया गया। उनमें से पच्चीस को पाश्चर ने अपना टीका लगाया। फिर दो सप्ताह बाद, पचासों को गिल्टी रोग के जीवाणुओं के शक्तिशाली और खतरनाक प्रभेद का टीका लगाया गया।

दो दिन बाद वे पच्चीस भेड़ें जीवित और स्वस्थ रहीं जिन्हें टीके द्वारा बचाया गया था। शेष में से अठारह मर गयीं और बाकी सात मरणासन्न थीं। पाश्चर की यह महान विजय थी।

इन खोजों से उत्साहित होकर पाश्चर ने एमाइल नामक युवा चिकित्सक की सहायता से यूरोप में भयभीत करने वाले अलर्क रोग के जीवाणुओं के टीके का आविष्कार किया। ६ जुलाई १८८५ को जोसेफ मास्टर नामक नौ वर्ष के बालक को इस टीके का प्रयोग कराकर अलर्क रोग से बचाया। इस महान सफलता का समाचार विश्व भर के अखबारों ने छापा और दुनिया के लोग खुशी से पागल हो उठे। इन्हीं खोजों ने पेनिसिलिन की खोज का मार्ग प्रशस्त किया।

हानिकारक जीवाणुओं को निरापद जीवाणुओं से लड़ाया गया

पाश्चर बूढ़ा हो चुका था लेकिन मानवता के कल्याण के लिए प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने की उसकी प्यास बुझी न थी। उसने इन रोगों के लिए अनुसंधान जारी रखे। एक दिन जब वह फ्लास्क में जीवाणु पाल रहा था तो उसमें कुछ कीटाणु वायु में से आ पड़े। उसके मन में आया कि वह फ्लास्क को नाली में उलट दे परन्तु सौभाग्य से उसने ऐसा नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अगले दिन उसने देखा तो यह जान-कर उसे आश्चर्य हुआ कि गिल्टी रोग के जीवाणु गायब हो गये थे। उसे अनुभव हुआ कि वायु से आये हुए कीटाणुओं ने अपनी संख्या के जोर से गिल्टी रोग के जीवाणुओं को मार डाला। इससे पाश्चर को एक आश्चर्यजनक बात सूझी। क्यों न हानिकारक जीवाणुओं से लड़ने के लिए निरापद जीवाणुओं को काम में लाया जाय ?

टीके का आविष्कार तथा पाश्चर का यह प्रयोग जो कि इस बात के प्रमाण थे कि एक प्रकार के जीवाणुओं को दूसरे प्रकार के जीवाणुओं से लड़ाकर मारा जा सकता है, पेनिसिलिन की खोज का आधार बने। वास्तव में टीके का आविष्कार, पेनिसिलिन की खोज का ही भाग था। महान वैज्ञानिक पाश्चर इन दोनों आविष्कारों के बीच की कड़ी था। लेकिन पाश्चर तथा उस समय के वैज्ञानिक इस प्रकार के प्रयोग के आधार पर जीवाणु-द्वेषी स्राव (एक प्रकार के जीवाणुओं को मारने में समर्थ दूसरे प्रकार के जीवाणुओं का स्राव) प्राप्त करने में असफल रहे।

स्यूडोमोनास ईरूजिनोसा : पाइयोसाइनेज

जब यह पता चला कि डिप्थीरिया के जीवाणु जीवविष उत्पन्न करते हैं तो बहुत-से चिकित्सकों के मन में आया कि कुछ कीटाणु ऐसे जीवविष भी उत्पन्न करते हैं जो अन्य जीवाणुओं को विषाक्त कर सकते हैं। उसी आधार पर परीक्षण होते रहे। सन् १८८९ में रुडाल्फ अमेरिक और आस्कर लो नामक दो जर्मन चिकित्सकों ने 'स्यूडोमोनास ईरूजिनोसा' नामक कीटाणु खोज निकाला। उन्होंने इस कीटाणु को बड़ी संख्या में पाला और उससे एक स्राव प्राप्त किया तथा उसका नाम 'पाइयोसाइनेज' रखा। यद्यपि वे इस स्राव को बहुत शुद्ध रूप में प्राप्त नहीं कर सके परन्तु चिकित्सा के इतिहास में सर्व प्रथम जीवाणु-द्वेषी स्राव यही था। पाइयोसाइनेज कभी-कभी तो अच्छा प्रभाव दिखलाता था किन्तु प्रायः इससे कोई लाभ नहीं पहुंचता था। कोई भी चिकित्सक निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता था कि इसका प्रभाव क्या होगा।

पेनिसिलियम नोटेटम का आविष्कार

पाइयोसाइनेज की चिकित्सा सम्बन्धी विफलता के बाद चिकित्सक किसी अन्य जीवाणु-द्वेषी की खोज में लग गये। वास्तव में पेनिसिलिन की खोज की कहानी १९२८ में स्काटलैंड निवासी वैज्ञानिक सर अलैकजेंडर फ्लेमिंग के प्रयोग से शुरू होती है जबकि वह लंदन स्थित सेंट मेरी के चिकित्सालय में 'माइक्रोकोकस स्थूरिअस' नामक बैक्टीरिया पर शोध कार्य कर रहे थे। उन्होंने इस बैक्टीरिया को अनेक पेट्री डिशों में कृत्रिम रूप से उगा रखा था। एक दिन अकस्मात उन्होंने देखा कि बैक्टीरिया का माध्यम एक हरे रंग के फफूंद के आ जाने के कारण दूषित हो गया है। उन्होंने इन दूषित डिशों को एक ओर रख दिया। कुछ ही दिनों में दूषित

पेनिसिलिन का आविष्कारक,
अलैकजैंडर फ्लेमिंग

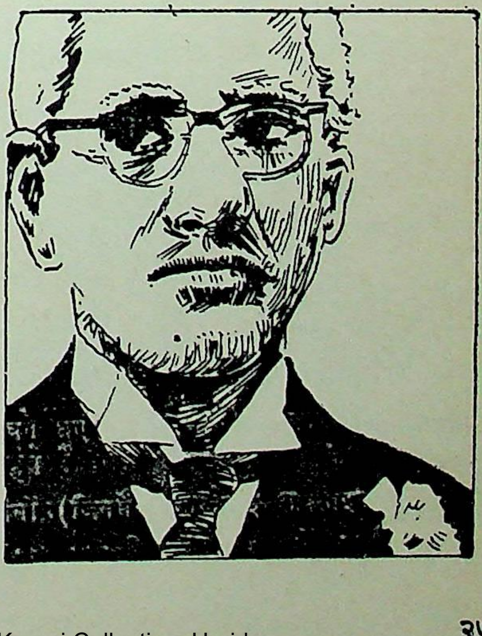

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेटों में लगा हुआ बैक्टीरिया धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

फ्लेमिंग ने इस घटना से प्रभावित होकर विचार किया कि क्यों न इसी नये फफूंद पर कार्य किया जाय। प्रारम्भ में इस हरे रंग के फफूंद को उन्होंने विभिन्न माध्यमों में उगाना आरम्भ किया। कुछ ही समय पश्चात उन्होंने इस फफूंद को पेनिसिलियम नोटेटम के नाम से पुकारा। जब यह फफूंद भली प्रकार से विभिन्न माध्यमों में उग आया, तब वह इसे नाना प्रकार के बैक्टीरिया के सम्पर्क में लाये। फफूंद के प्रकार से कई किस्मों के बैक्टीरिया प्रभावित हुए। इससे फ्लेमिंग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पेनिसिलियम नोटेटम एक विशेष प्रकार का पदार्थ स्रावित करता है जो कि बैक्टीरिया की वृद्धि को रोक देता था। इस पदार्थ विशेष को उन्होंने पेनिसिलिन नाम दिया।

खरगोशों पर पेनिसिलिन के टीके का प्रयोग

फ्लेमिंग ने खरगोशों पर पेनिसिलिन के टीके का प्रयोग किया और देखा कि इसका उन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु उनके पास पेनिसिलिन को बड़ी मात्रा में उत्पन्न करने की सुविधाएं नहीं थीं इसीलिए वह अपने परीक्षणों में अधिक प्रगति न कर सके। उन्होंने अपने कार्य के परिणाम प्रकाशित किये परन्तु चिकित्सा-संसार ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। शायद इसका कारण यह था कि पाइयोसाइनेज असफल सिद्ध हो चुका था।

इसके दस वर्ष बाद द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया। युद्ध के घायलों की चिकित्सा के लिए सल्फा औषधियों का प्रयोग किया जा रहा था। परन्तु आस्ट्रेलिया निवासी आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का चिकित्सक डब्ल्यू. फ्लोरे सोचा करता था कि सल्फा औषधियों से अधिक शक्तिशाली जीवाणुओं को खोज निकालना संभव है।

फ्लोरे, अर्नेस्ट येन नामक एक प्रतिभाशाली रसायनज्ञ की सहायता से, पेनिसिलिन का शोधित रूप बनाने में लग गया। राकफैलर फाउंडेशन तथा ब्रिटिश मैडिकल रिसर्च कौंसिल की आर्थिक सहायता से फ्लोरे और येन ने अपने कार्य को विस्तृत किया, फिर उसके बाद फफूंद को पालने की सुधरी हुई विधियां निकालीं और एक दिन वह दोनों वैज्ञानिक शुद्ध पेनिसिलिन निकालने में समर्थ हुए।

१९४२ में ब्रिटिश पुलिस का एक तैंतालीस वर्षीय सिपाही विषाक्त रक्त की उग्र अवस्था से पीड़ित था। उस पर सल्फा औषधियों का प्रयोग किया गया परन्तु कोई

पेनिसिलिन का उत्पादन : १. आसवन प्लांट, २. पेनिसिलिन विभाग, ३. फ्लास्क भरे जा रहे हैं

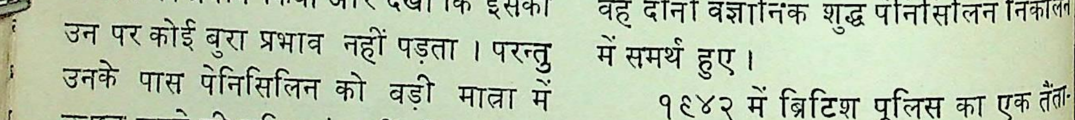

१ २ ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता न मिली और यह स्पष्ट था कि वह मर जायगा। उसे १२ फरवरी १९४२ को पेनिसिलिन का पहला टीका लगाया गया। चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर उसकी दशा में आश्चर्यजनक सुधार होने लगा। प्रतिदिन टीका लगाने से उसकी दशा निरन्तर सुधरती चली गयी। १५ फरवरी को उसका तापमान पुनः सामान्य हो चुका था। यह इन वैज्ञानिकों की महान सफलता थी।

पेनिसिलिन को बड़े पैमाने पर बनाने की विधियों का विकास आवश्यक था। किन्तु इसके लिए इंगलैण्ड उपयुक्त स्थान न था। ब्रिटेन के नगरों पर प्रतिदिन जर्मनी के बम गिर रहे थे। जुलाई में फ्लोरे ने पेनिसिलिन बनाने में अमरीकी सहायता प्राप्त करने के लिए अटलांटिक पार किया। अमरीका की सरकार ने इस प्रयोजन के लिए लाखों डालर लगा दिये। बड़े-बड़े कुंडों में पेनिसिलियम के अधिक उपयोगी प्रभेद बनाने की विधियां निकाली गयीं। १९५१ में वैज्ञानिकों को महान सफलता तब प्राप्त हुई जब वह एन. आर.आर.एल. विभेद से १०० यूनिट प्रति मिलिलीटर की दर से पेनिसिलिन प्राप्त कर सके।

पेनिसिलिन का आविष्कार चिकित्सा के इतिहास में सबसे बड़ी विजयों में से एक है। यह जीवाणुद्वेषी औषधि निमोनिया, तानिकाशोथ, एरिसिपेलस, स्कार्लेट फीवर, डिफ्थीरिया, रुधिर विदूषण, उपदंश, सुजाक आदि रोगों के उपचार में विशेष रूप से गुणकारी है। आज लाखों लोग ऐसे हैं जो पेनिसिलिन की बदौलत सुखी और उपयोगी जीवन बिता रहे हैं। १९५९ में अमरीका और इंगलैण्ड के चिकित्सा वैज्ञानिकों ने संश्लिष्ट (सिनथेटिक) पेनिसिलिन बनाने की विधियों की घोषणा की जिसका मतलब यह है कि फफूंद से पेनिसिलिन तैयार करने के बदले उसे सीधे रसद्रव्यों से ही तैयार कर लिया जाया करेगा।

अब तो कई ऐसी संश्लिष्ट पेनिसिलिनों पर परीक्षण हो रहे हैं जो रासायनिक रूप से एक-दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न हैं। आशा है कि कुछ समय पश्चात पेनिसिलिन की अधिक शक्तिशाली ऐसी किस्में तैयार करने के लिए मार्ग खुल जायेगा, जो उन रोगों को भी ठीक कर सकेंगी जो अब तक इसके प्रतिरोधी हैं।

भारत में पेनिसिलिन का उत्पादन हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक फैक्टरी ऋषिकेश तथा पिंपरी आदि स्थानों में किया जाता है। वहां पर दिन प्रतिदिन नये-नये एन्टीबायोटिक पदार्थों की खोज की जा रही है।

४. अनुसंधान प्रयोगशाला, ५. बैक्टीरिया प्रयोगशाला, ६. तैयार औषधि का चूहों पर परीक्षण

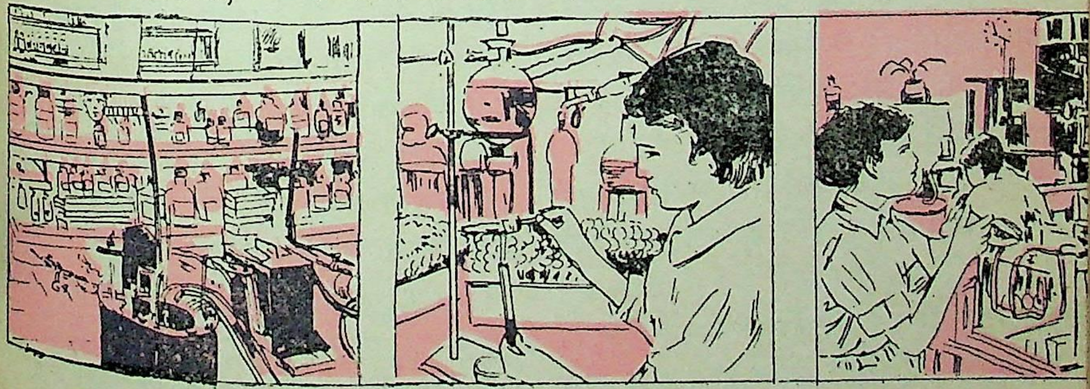

४ ५ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूल ही धूल

रमेशप्रसाद शर्मा

इन छोटे-छोटे धूल कणों को आप छोटा मत समझिये। इनके कारनामे बहुत बड़े होते हैं। धूल में आपके कपड़े और कमरे के साज-सामान को गन्दा कर देने वाली साधारण धूल से लेकर तारों के प्रकाश को धुंधला कर देने वाली कास्मिक धूल तक सम्मिलित है।

हम और हमारे परिवार के सदस्य दिन-रात इस धूल के पीछे पड़े रहते हैं, फिर भी इसके आगे हमारी एक नहीं चलती। घर की मेज-कुर्सियां और दूसरी चीजें सदैव मैली-सी ही रहती हैं और साफ न रखें तो रेत की एक पर्त जमती चली जाती है।

इधर हम स्वयं भी धूल को हवा में उड़ाते हैं। जब इसके कण बिखरते हैं तो साधारणतः हम इन्हें नहीं देख पाते। स्वच्छ हवा में धूल के कण न हों ऐसी बात नहीं है। रोशन-दान से आती हुई धूप में इसके कण हमें आसानी से दिखलायी देते हैं।

आखिर धूल है क्या ?

यदि हम सूक्ष्मदर्शी से निरीक्षण करें तो साधारण धूल में बालू के कण, बुरादे के कण, बैक्टीरिया और सफेदी के भी छोटे-छोटे कण दिखायी देंगे। हम जिस किसी चीज का प्रयोग करते हैं उसके अति सूक्ष्म कण रगड़ खाकर अलग हो जाते हैं और धूल में मिल जाते हैं। हमारी जेबों में मिलने वाली धूल में वस्त्र के रेशों की अधिकता होती है। हम कुर्सी पर बैठते हैं तो कपड़ा कुर्सी से रगड़ खाता रहता है और कुछ रेशे टूट जाते हैं। लकड़ी की चौखट रगड़ खाकर घिस जाती है तथा उसके छोटे-छोटे कण हवा में मिल जाते हैं। आग जलने से कार्बन बनता है जो हवा की आक्सीजन से मिलकर कार्बन-डाइआक्साइड बनाता है। इसका कुछ भाग फिर भी बचा रहता है; इस काजल के नन्हें कण बनकर इधर-उधर धूल बने उड़ते-फिरते हैं। सिगरेट के धुएं से भी धूल बनती है और एक बार धुआं छोड़ने पर लगभग तीस-चालीस लाख सूक्ष्म कण हवा में फैलते हैं।

इस धूल सम्पदा में जमीन से उड़ने वाली धूल की मात्रा भी कुछ कम नहीं है। खेतों में सूरज की तेज गरमी से धूल के कण सूखकर बारीक चूर्ण बन जाते हैं और हवा तेजी से उन्हें ऊपर उड़ा ले जाती है। वे हवा के साथ चलते रहते हैं और दुबारा धरती पर गिरने से पहले हजारों किलोमीटर की यात्रा भी कर लेते हैं। आजकल जो अणुबम के परीक्षण होते हैं उनसे नयी तरह की और भी खतरनाक धूल पैदा होती है जो उड़ते-उड़ते बहुत दूर देशों में जा गिरती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणुबम के एक विस्फोट से धूल का एक बहुत बड़ा बादल उठकर हवा में मिल जाता है। वह धूल रेडियो-सक्रिय होती है, जो पृथ्वी पर लौटती है तब प्राणियों और वनस्पतियों के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है।

कितने छोटे कण

धूल घनित द्रव्यों के छोटे-छोटे कणों की बनी हुई होती है। प्रत्येक कण में असंख्य अणु होते हैं और वे गैसों के अलग-अलग अणुओं से बड़े होते हैं, फिर भी हलकी-सी हवा लगने पर जमीन से उड़कर हवा में चक्कर काटने लगते हैं। धूल का छोटे से छोटा कण लगभग एक माइक्रोन के २०० वें भाग जितना छोटा होता है जब कि एक माइक्रोन एक मिलिमीटर का १०००वां भाग होता है।

धूल चिपकती है

धूल हरेक चीज से चिपकती है और इसीलिए हमें कपड़े साबुन से धोने पड़ते हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ अणुओं से बना है। अणु परमाणुओं से बनते हैं तथा परमाणु और भी छोटे-छोटे कणों से बनते हैं जिन्हें हम इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान के नामों से जानते हैं। प्रत्येक इलेक्ट्रान में ऋणात्मक विद्युतावेश रहता है और प्रोटान में धनात्मक। ये विपरीत विद्युतावेश एक दूसरे को आपस में खींचते हैं और समान आवेश एक दूसरे को दूर धकेलते हैं। यही बात धूल के चिपकने में लागू होती है। चिपकने की इसी क्षमता के कारण यह हमारे चेहरे से चिपक जाती है। खड़िया की लिखावट श्याम-पट पर चिपकी रहती है। यदि इन सूक्ष्म कणों में चिपकने की यह क्षमता न होती तो हमारे चेहरे के सारे साज-सिंगार, पौडर आदि धरे रह जाते।

धूल से सफाई भी

टैलकम पौडर से हम कपड़ों के कुछ धब्बों को साफ कर सकते हैं। जब पौडर को धब्बों के ऊपर छिड़का जाता है तो उसके कण धब्बों के द्रव्यों के अणुओं का शोषण कर लेते हैं। इसके पश्चात पौडर को झाड़ दिया जाता है तो पौडर के साथ वे अणु भी झड़ जाते हैं। इसी प्रकार चीनी को साफ करने के लिए कोयले का चूरा काम में लाया जाता है। गन्ने के रस में कई प्रकार की रंगीन अशुद्धियां रहती हैं। यदि इस रस को कोयले के चूरे भरे फिल्टर से प्रवाहित किया जाये तो चूरा अशुद्धियों को सोख लेता है और साथ ही चीनी के कणों को स्वच्छ भी कर देता है।

गैस-मास्क में भी लकड़ी के कोयले के चूरे का उपयोग किया जाता है। गैस-मास्क को पहनने वाला व्यक्ति जब श्वास लेता है तब वह चूरा हवा में मिली जहरीली गैसों के अणुओं को सोख लेता है और केवल आक्सीजन के अणुओं को ही फेफड़ों में जाने देता है।

धूल और प्रकाश

धुएं में कालिख के छोटे-छोटे कण होते हैं जो सूर्य के प्रकाश में नीले दिखायी देते हैं। धुएं का वह नीला रंग सूर्य के प्रकाश पर कालिख के कणों की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। आसमान का नीलापन भी सूर्य के प्रकाश पर हवा में पाये जाने वाले छोटे-छोटे धूल कणों का ही परिणाम है। आसमान का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

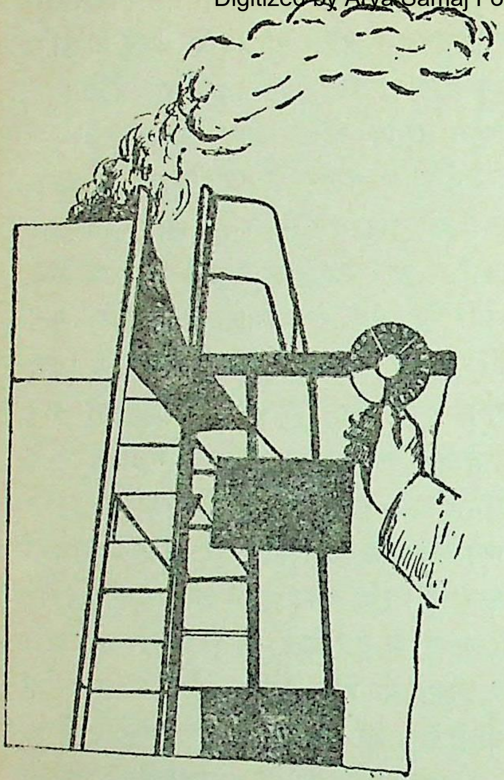

इस चकरी से धुएं की सघनता मापी जाती है। इसकी परिधि पर छेद हैं जिनमें होकर धुएं की जांच की जाती है और प्रत्येक वृत्तखण्ड की कालिमा से उसका मिलान किया जाता है

नीला रंग धूल के कणों और हवा में मिलने वाली गैसों के अणुओं के द्वारा ही बनता है।

जब प्रकाश धूल भरी हवा से गुजरता है तब धूल के कण प्रकाश के एक भाग को परावर्तित करते हैं और वे हमें नजर आने लगते है। यह इसलिए कि प्रत्येक कण एक शीशे का काम करता है और प्रकाश के कुछ भाग को परावर्तित कर देता है। तभी प्रकाश बिखर जाता है।

रात के समय गांवों में अधिक तारे दिखायी देते हैं जबकि शहर में उतने नहीं दिखायी देते। इसका कारण यह है कि शहर की हवा में धूल छायी रहती है और बहुत से तारों का प्रकाश हम तक नहीं पहुंच पाता, केवल अधिक चमकीले तारों का ही प्रकाश हम तक पहुंच पाता है।

गोधूलि भी हवा में उपस्थित कणों द्वारा प्रकाश का परिक्षेपण मात्र है। सूर्यास्त के पश्चात जो परावर्तित प्रकाश चारों ओर फैला रहता है उसी को गोधूलि कहते हैं। जिस समय सूर्य क्षितिज से नीचे चला जाता है उस समय उसकी किरणें पृथ्वी की आड़ में पड़ती हैं और हमारे पास तक नहीं पहुंच पातीं। फिर भी कुछ समय के लिए वे हमारे ऊपर की वायु तक पहुंचती हैं। इस स्थिति में वायु के कण प्रकाश का परिक्षेपण करते हैं और सूर्यास्त के पश्चात सूर्य न होने पर भी हमारा आकाश गोधूलि से प्रकाशमान रहता है।

जीती-जागती धूल

धूल में प्रोटोजोआ नामक एककोशिकीय जीवाणु भी होते हैं, तालाब के सूखने पर इनके चारों ओर एक कठोर आवरण बन जाता है जिसके अन्दर ये निष्क्रिय दशा में भी जीवित बने रहते हैं। सूखी अवस्था में इन्हें पुटी कहते हैं। यही पुटी हवा के साथ उड़ती रहती है और धूल का अंग बन जाती है। पानी के सम्पर्क में आने पर यह जीवाणु पुटी से बाहर निकलकर पुनर्जीवित हो जाते हैं और सामान्य जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

धूल और स्वास्थ्य

धूल में कई प्रकार के बैक्टीरिया भी होते हैं। उनमें से अनेक तो निमोनिया और हैजा जैसे रोग उत्पन्न करते हैं। मृत जीवों और वनस्पतियों के सड़ाने में भी कुछ बैक्टीरिया विशिष्ट कार्य करते हैं। अन्य कुछ प्रकृति का नाइट्रोजन चक्र बनाये रखते हैं।

समुद्री तथा पर्वतीय वायु स्वच्छ होती है उसके २७,००० घन सेमी में केवल कुछ हजार ही धूल के कण मौजूद रहते हैं, जबकि बड़े शहरों के ऊपर की हवा के ५००० घन सेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक करोड़ तक धूल के कण पाये जाते हैं।

श्वांस लेते समय धूल हमारे फेफड़ों में हवा के साथ पहुंचती है। जब हम प्रश्वास छोड़ते हैं तब उसमें से केवल कुछ ही कण बाहर निकल पाते हैं और अधिकांश अन्दर ही रह जाते हैं। नाक, गला तथा फेफड़े कणों के लिए जाल का काम करते हैं और साठ प्रतिशत कणों को तो रोक ही लेते हैं। इसी कारण महानगरों में रहने वालों के फेफड़ों की भीतरी सतह काली हो जाती है जबकि स्वच्छ हवा में रहने वालों के फेफड़ों की भीतरी सतह प्राकृतिक गुलाबी होती है।

हवा को धूल से मुक्त करना

धूल के बड़े कण तो हवा को सेटिलमेंट चेम्बर में प्रवाहित करने से नीचे एकत्र हो जाते हैं। छोटे-छोटे कणों को अलग करने के लिए हवा को इनर्शियल सेपरेटर में से प्रवाहित किया जाता है। इसमें लगी नली के भीतरी छेद के सामने एक रोक लगी रहती है जो हवा की दिशा बदल देती है। हवा तो आसानी से अपनी दिशा बदल देती है किन्तु धूल के कण ऐसा नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार धूल के कण हवा से अलग हो जाते हैं।

कागज, कपड़े, फाइब्रर ग्लास, स्टील वूल से बने हुए घने जाल के फिल्टर से हवा प्रवाहित करने पर धूल के कण तो जाल में ही फंसे रह जाते हैं और हवा स्वच्छ हो जाती है। धूल के बचाव के लिए रेस्पिरेटर तथा एयर-मास्क का प्रयोग किया जाता है। रेस्पिरेटर से हवा छनकर नाक में पहुंचती है तथा एयर-मास्क धूल भरी हवा को दूर रखता है और विशिष्ट दाब पर एकत्रित केवल शुद्ध वायु ही प्रवेश कर पाती है।

कॉस्मिक धूल

टूटते हुए तारे जिन्हें हम उल्का कहते हैं, वास्तव में अन्तरिक्ष से चलकर धरती के वायुमण्डल में प्रवेश करने वाली चट्टानें होती हैं जो कि लगभग ५० किमी प्रति सेकण्ड की गति से चलती हैं। उस तीव्र गति के कारण वातावरण के साथ घर्षण से इनमें इतना ताप उत्पन्न हो जाता है कि ये स्वयं जलने लगती हैं। अन्ततः उल्काएं राख तथा धूल के रूप में हवा में मिल जाती हैं। प्रतिदिन लगभग एक अरब उल्काएं पृथ्वी के वायुमण्डल में जलती हुई प्रवेश करती हैं जिससे लगभग पांच टन धूल बढ़ती है। यदि टक्कर से ग्रह के चकनाचूर होने की बात सही मानी जाये तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि पृथ्वी के वायुमण्डल में उल्कापिण्ड की जो राख है वह भी किसी टूटे-फूटे ग्रह के अवशेष का ही अंश है।

हवा में पाये जाने वाली यह धूल चाहे लाभप्रद हो या हानिप्रद, इसका सम्बन्ध आकाश की धूल से है। अन्तरिक्ष की इसी कॉस्मिक धूल से प्रत्येक प्रकार की धूल का जन्म हुआ है।

प्राणलेवा धुआं-कुहरा

लन्दन में दिसम्बर १९५२ में एक सप्ताह के घने धुएं-कुहरे (स्मॉग) के कारण लगभग ४००० व्यक्तियों ने प्राण गंवाये थे।

धूल व धुएं के अलावा हवा में रासायनिक गैसों (जिनमें सल्फर डाइ आक्साइड प्रमुख है) की उपस्थिति भी वायु-संदूषण का कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सल्फा औषधें

डा. सत्यकुमार

रसायन चिकित्सा में सर्वप्रथम सल्फा औषध के रूप में प्रयुक्त यौगिक 'प्रोटोन्सिल रुब्रम' था। इसका रासायनिक नाम २ : ४-डाइ-एमीनो-एजोबेनजीन ४'-सल्फोनेमाइड है तथा इसका संश्लेषण १९०८ में विएना में गेलमो ने किया था। औषध के रूप में इस रासायनिक यौगिक का महत्त्व जर्मनी के डोमेग ने १९३५ में ज्ञात किया। १९३९ में इस खोज के उपलक्ष में उसे नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। फ्रांस के ट्रेफोनेल्स, निट्टी तथा बोवेट ने पता लगाया कि इस यौगिक का बैक्टीरियानाशी गुण पैरा-एमीनो-बेनजीन सल्फोनेमाइड के कारण होता है। इसे संक्षेप में सल्फानिलेमाइड कहते हैं तथा यह अन्य व्युत्पन्नों (सल्फा औषधों) को बनाने के लिए मूल पदार्थ है। इसी कारण सल्फा औषधें रसायन शास्त्र में सल्फोनेमाइड्स के नाम से विख्यात हैं। सल्फानिलेमाइड का सूत्र है :

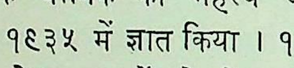

विशेष बात यह है कि पैरा-एमीनो (p-NH_2) ग्रुप बैक्टीरिया नष्ट करने के लिए अनिवार्य है। यदि इसके स्थान पर ओर्थो या मेटा कर दिया जाये तो क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। इस समूह का विस्थापन केवल ऐसे मूलकों द्वारा ही किया जा सकता है जो ऊतकों में स्वच्छन्द एमीनो समूह में परिवर्तित हो जायें। बेनजीन चक्र में विस्थापन करने पर भी यौगिक निष्क्रिय हो जाता है।

सल्फोनेमाइडों के महत्त्व का इस तथ्य से अनुमान किया जा सकता है कि १९४० तक ३००० सल्फोनेमाइड बनाये जा चुके थे। अब तक ६००० से अधिक सल्फोनेमाइड बन चुके हैं तथा चिकित्सा में उनकी उपयोगिता का अध्ययन किया जा चुका है। इनमें से लगभग १५-१६ महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण खोज १९३८ में मे एण्ड बेकर ने 'सल्फापिरिडिन' की। इस यौगिक को बनाने के लिए ६९३ प्रयत्न करने पड़े। अतः इसका नाम M&B 693 पड़ गया। बम्बई, दिल्ली, मद्रास में इस कम्पनी का पोस्ट बक्स नंबर भी ६९३ है।

वर्गीकरण

सल्फा औषधियों को तीन मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है :

प्रथम वर्ग में वे यौगिक आते हैं जो सल्फोनेमाइड समूह (SO_2NH_2) के दो हाइड्रोजन परमाणुओं में से एक को प्रतिस्थापित करके बनते हैं—उदाहरणतः सल्फापिरिडिन, सल्फाथायेजोल, सल्फाडायेजिन, सल्फाऐसिटेमाइड, सल्फाडाइमिडिन, सल्फामेरिजिन, सल्फागुनिडिन, सल्फाफ्युरेजोल, सल्फासोमिडिन इत्यादि।

इनका सल्फानिलेमाइड में परिवर्तन नहीं होता तथा ये मूल पदार्थ से अधिक प्रभावशाली होते हैं।

द्वितीय वर्ग में वे यौगिक आते हैं जो एमीनो समूह (NH_2) के एक हाइड्रोजन परमाणु के प्रतिस्थापन द्वारा बनते हैं—उदाहरणतः प्रोन्टोसिल, रुबिजोल, प्रोसेप्टेसिन इत्यादि।

इनका स फानिलेमाइड में पूर्ण परिवर्तन या आंशिक जलांशन हो जाता है। ये मूल पदार्थ से अधिक प्रभावशाली नहीं होते।

तृतीय वर्ग में वे यौगिक आते हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सल्फोनेमाइड व एमीनो दोनों समूहों के एक-एक हाइड्रोजन परमाणु के प्रतिस्थापन द्वारा बनते हैं--उदाहरणतः एक्सीनिल सल्फाथायेजोल व थेलिक सल्फाथायेजोल ।

चिकित्सा में मुख्य उपयोग के अनुसार सल्फा औषधों को निम्न समूहों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) **स्थानीय प्रयोग के लिए**—ये तांत्रिक प्रयोग के लिए विषैले होते हैं अतः इनका मुख्यतः स्थानीय प्रयोग होता है।

(i) **जख्मों पर**--उदाहरणतः सल्फाथायेजोल, सल्फानिलेमाइड इत्यादि ।

(ii) **श्लेष्मिक झिल्लियों पर**--सोडियम सल्फाऐसिटेमाइड ।

(ख) **तांत्रिक प्रयोग के लिए** :

(i) **अधिक अवशोषणीय यौगिक**--ये प्रायः सामान्य तथा मूत्रीय संक्रमण के लिए प्रयुक्त होते हैं तथा निम्न उपसमूहों में विभाजित किये जा सकते हैं :

(अ) **लघु प्रभावी औषध**--उदाहरणतः सल्फाडायेजिन, सल्फाडिमिडिन, सल्फामेरिजिन, सल्फाफ्युरेजोल, सल्फासोमिडिन, सल्फाथायेजोल इत्यादि ।

इन औषधों का प्रयोग ३-४ घंटे की अवधि के वाद करना पड़ता है ।

(आ) **दीर्घ प्रभावी औषध**--उदाहरणतः सल्फामेथोक्सी-पिरिडेजिन, सल्फाफिनेजोल, सल्फाडाइमेथोक्सीन इत्यादि ।

(ii) **अल्प अवशोषणीय यौगिक**--ये प्रायः आंत्रिक संक्रमणों के लिए प्रयुक्त होते हैं । उदाहरणतः सल्फागुनिडिन, थेलिल-सल्फाथायेजोल, सक्सीनिल-सल्फाथायेजोल, थेलिल-सल्फाऐसिटेमाइड, इत्यादि ।

सल्फा औषधों की क्रियाविधि

प्रारंभ में समझा जाता था कि सल्फा औषधें शरीर में उपस्थित सुरक्षा पंक्ति को सुदृढ़ करती हैं जिससे वह संक्रमण का सामना कर सके । अनुमान था कि ये औषधें संक्रमण से उत्पन्न होने वाले विष को नष्ट कर देती हैं । मेकइनटोश एवं विटले का विचार था कि ये औषधें रोगाणुनाशी हैं । १९४० में वुड एवं फिल्डेस ने घोषणा की कि सल्फा औषधें, तंत्र के कुछ प्रकिण्वों (एनजाइमों) में, संरचना में समानता होने के कारण, ४-एमीनो-बेनजोइक अम्ल की प्रतिस्थापना करती हैं । बैल व रोवलिन ने १९४२ में यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि सल्फा औषध के SO_2-समूह का ऋण आवेश शरीर में उपस्थित बैक्टीरिया-रोधियों की संख्या वढ़ाता है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सल्फा औषध :

(i) प्रकिण्वों में ४-एमीनो-बेनजोइक अम्ल की प्रतिस्थापना कर, रोगाणुओं के पनपने में बाधक होती है, जिससे उनकी संख्या घटती है;

(ii) रोगाणुओं का विरोध करने वाले जीवाणुओं की संख्या वढ़ाती है; तथा

(iii) सल्फा औषध की अधिक मात्रा भक्षकाणुओं (फैगोसाइटों) की संख्या वढ़ाकर, रोगाणुओं को नष्ट कर देती है ।

कुछ प्रमुख सल्फा औषधें

(१) **सल्फोनिलेमाइड** (४-एमीनो-बेनजीन सल्फोनेमाइड)

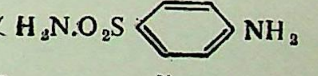

चिकित्सा शास्त्र में प्रयुक्त यह सर्वप्रथम सल्फा औषध है । यह क्षारों में अल्प विलेय क्रिस्टलीय चूर्ण है । यह स्ट्रेप्टोकॉकस संक्रमण में प्रयोग की जाती है ।

(२) **सल्फापिरिडिन** (२, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइड पिरिडिन)

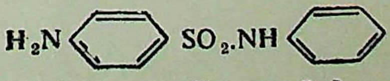

यह शीतल जल में अल्प विलेय सफेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिस्टलीय चूर्ण है। यह निमोनिया में प्रयोग की जाती है। विषैला प्रभाव होने के कारण इसका प्रचलन अब कम हो गया है। यह '६९३ की गोली' के नाम से विख्यात रही है। इसके प्रयोग से निमोनिया से होने वाली मौतों का प्रतिशत २५ से ४ रह गया था।

(३) **सल्फाथायेजोल** (२, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइडोथायेजोल)

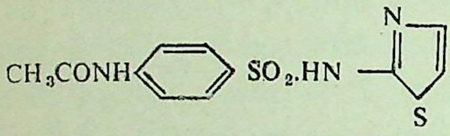

यह 'सीबाजोल' नाम से विख्यात औषध है। यह जल में अविलेय, पर अम्लों व क्षारों में विलेय, सफेद क्रिस्टलीय चूर्ण है। यह सल्फोनिलेमाइड से ५० गुना अधिक गुणकारी है। यह स्ट्रेप्टोकॉकस संक्रमण, निमोनिया व मेनिनजाइटिस रोगों में प्रयोग की जाती है। यह तथा इसका सोडियम लवण घावों के लिए उत्तम औषध है।

(४) **सल्फामेरिजिन**--(२, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइड, ४-मेथिल पिरिमिडिन)

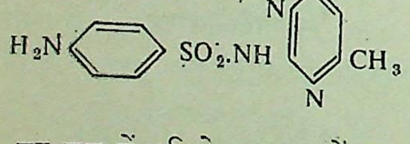

यह जल में अविलेय पर अम्लों व क्षारों में विलेय सफेद चूर्ण है। यह प्रकाश में रखने पर भूरा हो जाता है।

(५) **सल्फामेजेथिन** (२, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइडो ४ : ६ डाइमेथिल-पिरिमिडिन)

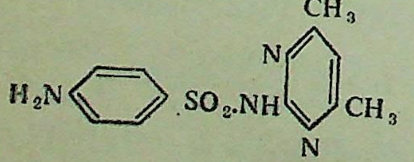

यह जल में अल्प विलेय परन्तु अम्ल व क्षारों में विलेय सफेद चूर्ण है। इसे सल्फा-डिमिडिन भी कहते हैं।

(६) **सल्फाडायेजिन** (२, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइड, पिरिमिडिन)

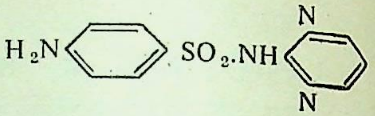

तत्काल अवशोषित हो जाने के कारण यह उत्तम सल्फा औषध है। इसकी थोड़ी मात्रा ही प्रभावकारी होती है तथा विषैला प्रभाव नहीं होता। यह मूत्रीय क्षेत्र के संक्रमण, मेनिनजाइटिस, यौन अंगों के विकारों, प्लेग आदि के लिए सफल औषध है।

(७) **सल्फागुनिडिन** (४-एमीनो-बेनजीन सल्फोनिलगुनिडिन)

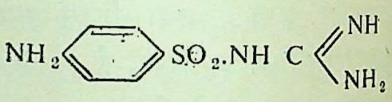

यह शीतल जल में अल्प विलेय सफेद चूर्ण है। गरम जल व अम्लों में पूर्ण विलेय तथा क्षारों में अविलेय है। यह हैजा, पेचिश, जख्म आदि के लिए उपयोगी औषध है।

(८) **सल्फाफ्युरेजोल** (५, ४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोनेमाइडो ३ : ४ डाइमेथिल-आइसोक्सेजोल)

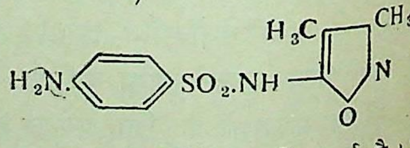

यह जल में विलेय सफेद चूर्ण है। यह मेनिनजाइटिस, निमोनिया व मूत्रीय क्षेत्र के संक्रमण में प्रयुक्त होता है।

(९) **सक्सीनिल-सल्फा थायेजोल** (२, ४-सक्सीनिल एमीनो-बेनजीन सल्फोनेमिडो, थायेजोल मोनोहाइड्रेट)

यह सफेद चूर्ण है जो खुला रखने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

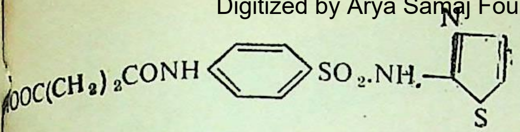

भूरा हो जाता है। पेचिश में प्रयुक्त होता है।

(१०) **थेलिल-सल्फाथायेजोल** (२, ४-थेलिल एमीनो-बेनजीन सल्फोनेमिडो, थायेजोल)

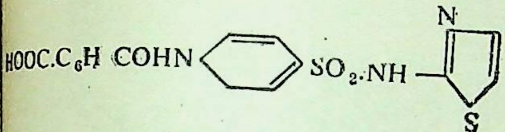

यह जल में अविलेय सफेद चूर्ण है। यह पेचिश व गैस बनना रोकने के लिए प्रयुक्त होता है।

(११) **सल्फोऐसिटेमाइड** (४-एमीनो-बेनजीन-सल्फोऐसिटेमाइड)

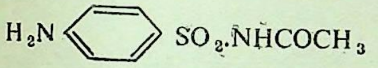

यह शीतल जल में अल्प विलेय सफेद चूर्ण है। यह विषैला होता है। यह प्रायः सोडियम लवण के रूप में मूत्रीय क्षेत्र व नेत्र के संक्रमणों के लिए प्रयुक्त होता है।

उपरोक्त औषधों के अतिरिक्त सल्फाक्विनोक्सेलिन, सल्फासोमिडिन, सल्फामेथिजोल, सल्फामेथोक्सी-पिरिडिजिन, थेलिल-सल्फाऐसिटेमाइड तथा सेलिल-एजोसल्फापिरिडिन भी सफलतापूर्वक प्रयुक्त सल्फा औषधें हैं।

खांसी, जुकाम के लिए प्रयुक्त औषध 'ओरिसुल' का नाम सल्फा औषधों में सल्फाफेनिजोल है। सल्फाडाइमेथोक्सिन 'मेड्रिबोन' नाम से विख्यात है।

श्रेष्ठता के कारण

सल्फा औषधों की गणना श्रेष्ठ औषधियों में इस कारण होती है कि ये पाचन तंत्र में अवशोषित हो जाती हैं तथा गोली या चूर्ण के रूप में खायी जा सकती हैं। अवशोषण के पश्चात ये शरीर के लगभग प्रत्येक भाग में पहुंच जाती हैं।

सल्फा औषधें लगाने तथा खाने, दोनों प्रकार से प्रयोग में आती हैं। इनके इंजेक्शन भी लगते हैं। यदि रोग की ठीक जानकारी प्राप्त कर ली गयी है तो सही सल्फा औषध प्रयोग करने पर रामवाण का काम करती है। वैसे ये रोग को प्रारंभिक अवस्था में सहज ही नियंत्रित कर लेती हैं। बढ़े हुए रोग के उपचार में समय अधिक लगता है तथा औषध की अधिक मात्रा काफी दिनों तक लेनी पड़ती है। प्रभाव में विलम्ब होता है। अधिक दिनों तक दवा लेते रहने से दूसरी हानि यह होती है कि रोगाणु औषध के प्रति उदासीन हो जाते हैं। उन्हें औषध सहने का अभ्यास हो जाता है तथा वे सहज नष्ट नहीं होते। अतः आधुनिक उपचार में सल्फा औषधों का प्रयोग २-३ दिन करते हैं। यदि लाभ न हो तो प्रतिजैविकी (एन्टिवायोटिक्स) प्रारंभ कर देते हैं।

हानियां

सल्फा औषधों का हानिकारक प्रभाव भी होता है। रोगी के तंत्र के लिए उपयुक्त न होने पर सिरदर्द, चक्कर आना, जी मितलाना, वमन होना, खुजली हो जाना, शरीर पर चकत्ते पड़ जाना, अम्लता में वृद्धि, मूत्रीय क्षेत्र में क्रिस्टलों का निक्षेपन, रक्त में विकार, तापमान में वृद्धि इत्यादि हो जाते हैं। इसीलिए कुशल चिकित्सक इनके प्रयोग के साथ, इनका विषैला प्रभाव कम करने की औषध भी देते हैं। जल का प्रयोग तो इनके सेवन के साथ खूब करना ही होता है। इसी कारण चिकित्सा में आजकल प्रतिजैविकियों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। उनका विषैला प्रभाव नहीं होता। परन्तु वे महंगे हैं तथा तत्काल प्रभाव नहीं करते अतः सामान्य व्यक्ति सस्ते व तत्काल उपचार के लिए आज भी सल्फा औषधों पर निर्भर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुमण्डल के अद्भुत रहस्य (२)

कुलदीप चड्ढा एम.एस-सी.

ऊंचाई के साथ हवा की केवल बनावट ही नहीं बदलती, बल्कि उसके अनेक रोचक रहस्य भी सामने आते हैं। इन रहस्यों की चर्चा करने से पूर्व, आइये उन साधकों को श्रद्धांजलि अर्पित करें, जिनके साहसिक प्रयासों के फलस्वरूप ये प्रकाश में आये।

ऊपरी वायुमंडल के साहसिक खोजी

इन प्रयासों का आधार था मनुष्य की वायुमंडल के प्रति जिज्ञासा। प्रत्येक प्राचीन देश के इतिहास में हवा में उड़ने की चर्चाएं दर्ज हैं। हमारे देश में भी वीर हनुमान के हवा में उड़ने, पुष्पक विमान, राजा भोज के हवाई घोड़े आदि की अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं। यही नहीं, 'ब्राह्मण' ग्रंथों व 'समरांगण सूत्राधार' आदि प्राचीन साहित्य में उड़ने वाली मशीनों के डिजाइन आदि भी वर्णित हैं। इस स्थल पर उस विस्तार में जाना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि हमारा उद्देश्य उड्डयन विज्ञान का इतिहास देना न होकर, वायु की खोज के इतिहास का परिचय देना है। खेद है कि इस दिशा में प्राचीन भारतीयों के प्रयासों की चर्चा कहीं देखने को नहीं मिलती।

यूनान में डाइडेलस की कथा प्रचलित है। इस साहसिक ने पक्षियों के पंखों को मोम से जोड़कर, अपने लिए तथा अपने पुत्र के लिए बड़े-बड़े पंख बनाये और यूनान के निकट स्थित क्रीट टापू से उड़कर इटली की ओर प्रस्थान किया। कहते हैं कि वह स्वयं तो उड़कर सिसली द्वीप तक जा पहुंचा, लेकिन उसके पुत्र के पंखों का मोम सूर्य की गर्मी के कारण पिघल गया और वह समुद्र में गिरकर मर गया।

फारसी के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी ने अपने काव्य में शाह काई काउस के हवा में उड़ने का जिक्र किया है। इसके लिए उसके हितैषियों ने लकड़ी का एक ढांचा तैयार करवाया, जिसके दो सिरों पर दो उकाब पक्षी बंधे थे। उनके ठीक ऊपर लकड़ी की पट्टियों पर मांस के टुकड़े रखे थे। उकाब अपनी भूख मिटाने के लिए मांस की ओर उड़ते तो उनके प्रयास से सारा ढांचा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर की ओर उठ जाता, शाह को भी अपने साथ लिये हुए। कुछ देर तक तो वह ऊंचा उड़ता रहा, पर बाद में, जब पक्षियों की ताकत ने जवाब दे दिया, तो शाह को विवश होकर एक मरुस्थल में उतरना पड़ा।

गुब्बारों का प्रयोग

वायु की प्रारंभिक खोज वास्तव में तब शुरू हुई, जब इस प्रकार के अल्हड़ प्रयासों के स्थान पर इनसान ने गुब्बारों की मदद लेना प्रारंभ किया। यह परम्परा संभवतया फ्रांस देश के लियों नगर के दो भाइयों ने शुरू की। उन्होंने धुएं को ऊपर उठते हुए देखकर विचार किया कि क्या इसके सहारे इनसान भी हवा में नहीं लटक सकता? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए इन गोलफियर बंधुओं ने कागज के गुब्बारे बनाकर, उनमें धुआं भरा और हवा में छोड़ा। जब उनके गुब्बारे हवा में अनेक मीटर तक ऊपर उठे तो उनके हर्ष की सीमा न रही। पर इन मतवालों ने इसी से ही संतोष नहीं कर लिया। वे इन्हें अधिक ऊंचाई तक भेजना चाहते थे। कहते हैं कि उनकी इस परेशानी में उनकी

शाह काई काउस ने उकाब पक्षियों की सहायता से उड़ने का प्रयास किया

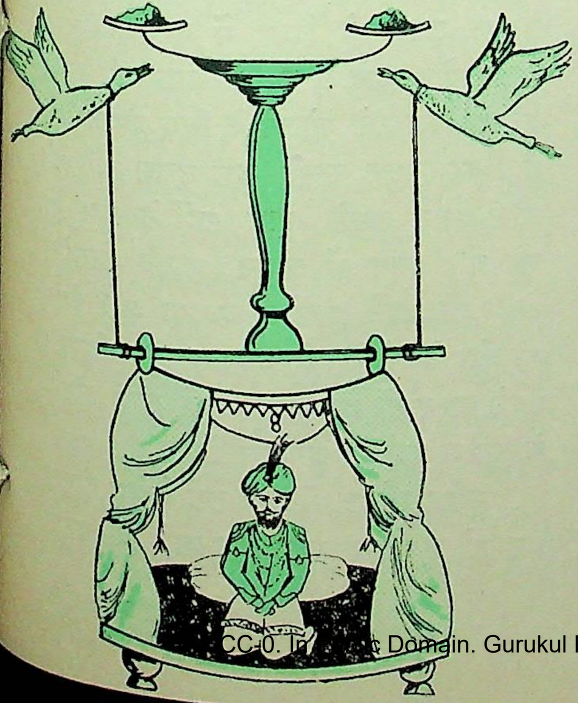

पक्षियों के पंखों की सहायता से हवा में उड़ने वाले 'पक्षी मानव'

सहायता एक साधारण बुद्धि की पड़ोसन ने की। उसकी सलाह पर उन्होंने गुब्बारों के नीचे एक तश्तरी बांध दी, जिसमें ज्वाला जलती रहे और यह निरंतर धुंआ पैदा करती रहे। परिणामस्वरूप उनके गुब्बारे अधिकाधिक ऊपर जाने लगे। लेकिन गोल्फियर बंधुओं को असली खुशी उस समय हुई जब सन १७८३ की २१ नवंबर को फ्रांस के नगर वरसाई में उनके बने गुब्बारे से लटक कर एक व्यक्ति हवा में ९० मीटर तक उड़ा और लगभग ९ मिनट तक हवा में लटका रहा। (कई स्थलों पर व्यक्तियों की संख्या दो तथा उनके नाम मार्क्विस द आर्लेन्दे पाइलात्रे द रोजियर दिये गये हैं।)

इस घटना के दस दिन बाद ही इस दिशा में एक और प्रगति हुई। प्रो. चार्ल्स ने अप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

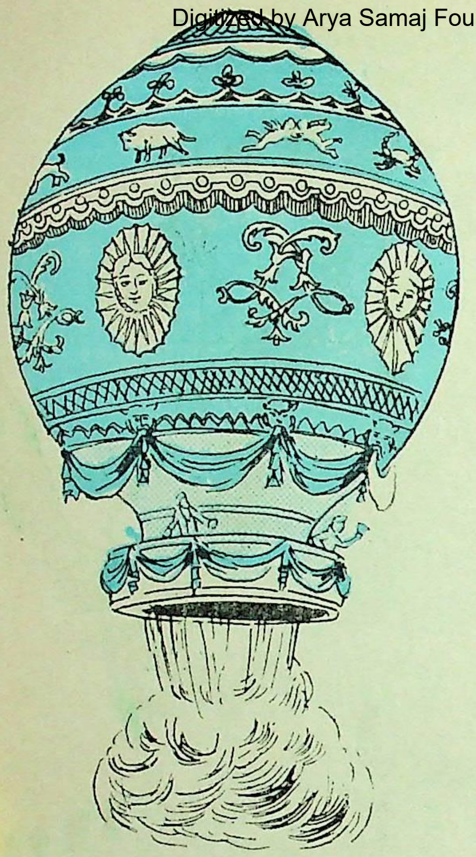

मौंटगोल्फियर का गुब्बारा

गुब्बारे को धुएं के बजाय हाइड्रोजन से भरा और उसकी सहायता से एक सफल उड़ान भरी। हाइड्रोजन प्रकृति का सबसे हलका तत्त्व होने के कारण, गुब्बारों में प्रयोग के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। इसके अतिरिक्त प्रो. चार्ल्स ने इस गुब्बारे में वाल्व का पहली बार प्रयोग किया। वाल्व के द्वारा गुब्बारे की गति और किसी हद तक दिशा भी नियंत्रित की जा सकती थी। प्रो. चार्ल्स के बाद डा. फैबरी ने १७८४-८५ में गुब्बारों में दो उड़ानें भरीं। उनके बाद भी अनेक साहसियों ने, विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से, गुब्बारों के निर्माण में निरन्तर सुधार करके अनेक उड़ानें भरीं।

कुछ महत्त्वपूर्ण उड़ानें

वैज्ञानिक दृष्टि से प्रथम महत्त्वपूर्ण उड़ान शायद १८०४ में गे ल्यूसक तथा बॉय ने की। उनके गुब्बारे में, जो ७००० मीटर की ऊंचाई तक उड़ा, हवा के तापमान, नमी आदि को नापने के निमित्त उपयोगी यन्त्र लगे थे। जॉन वेल्श ने, वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के लिए, १८५० के लगभग कीव से चार उड़ानें भरीं। परन्तु जिज्ञासा और साहस का जो उदाहरण ग्लैशर तथा काक्सवैल ने स्थापित किया, उसकी कोई तुलना नहीं। वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के यन्त्रों आदि के अतिरिक्त उनके गुब्बारे में, ऊंचाई पर सांस लेने में आसानी के लिए, आक्सीजन की व्यवस्था नहीं थी। १५ सितम्बर १८६२ को जब उनका गुब्बारा क्रम से ऊपर उठता हुआ लगभग ६००० मीटर की ऊंचाई पर पहुंचा, तो हवा के कम दवाव के कारण ग्लेशर सांस लेने में कठिनाई अनुभव करने लगे। उनका सिर चकराने लगा और यंत्रों के पैमाने पढ़ना उनके लिए असंभव हो गया। अपनी इस शोचनीय अवस्था में उन्होंने अपने साथी काक्सवैल को आवाज लगायी।

पर बेचारे काक्सवैल स्वयं एक समस्या में उलझे हुए थे। गुब्बारे में सर्दी बढ़ने और दबाव कम हो जाने के कारण वे उसका ऊपर की दिशा में बढ़ना रोकना चाहते थे। इसके लिए वे वाल्व की रस्सी को खींचकर उसे खोलने के लिए प्रयत्नशील थे। पर उधर रस्सी कुछ उलझ गयी थी और इधर उनके हाथ सर्दी से सुन्न हो रहे थे। अन्त में साहस करके उन्होंने रस्सी को अपने दांतों में दवाया और सिर को जोर से पीछे की ओर झटका दिया। इससे वाल्व तो खुल गया पर वे स्वयं झटके के कारण फर्श पर जा गिरे।

उधर ग्लैशर भी अब तक बेहोश होकर गिर पड़े थे। पर वाल्व खुल जाने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब गुब्बारे का ऊपर जाना रुक चुका था और वह नीचे की ओर उतर रहा था। पर इसी बीच गुब्बारा लगभग ११ किलोमीटर की ऊंचाई को छू चुका था। संसार की सबसे ऊंची हिमालय की चोटी माउंट एवरेस्ट से भी यह ऊंचाई कोई २ किलोमीटर अधिक थी। इस स्थल पर हवा का दवाव बहुत ही कम होने के कारण, उड़ाकों के नाक व कान आदि से लहू निकलना शुरू हो गया था। गनीमत इतनी ही थी कि वे दोनों धरती पर जिन्दा वापस लौट आये थे।

हालांकि इन उड़ाकों को संसार भर में बहुत सम्मान मिला तो भी उनके साथ जो कुछ हो गुजरा था, उसके कारण गुब्बारों की उड़ानें कुछ समय के लिए रुक सी गयीं। तो भी जर्मनी के डा. सूरिंग तथा डा. वरसन ने आक्सीजन से युक्त गुब्बारे में १०,००० मीटर से भी ऊंची उड़ान भरी।

बीसवीं शती के आरंभ में ब्रह्माण्ड किरणों का आविष्कार हुआ। इस क्रिया का कुछ विस्तार से हम बाद में उल्लेख करेंगे। इस क्रिया में अनुसन्धान की आवश्यकता ने गुब्बारों की उड़ानों को दोबारा लोकप्रिय बनाया। इस सिलसिले की प्रथम महत्त्वपूर्ण उड़ान कोहल् होस्तर ने की, जब वे ८८५० मीटर तक उड़े। १९२७ में अमरीकी सेना के कप्तान ग्रे एक खुले गुब्बारे में १२,७५० मीटर तक उड़े। अपने इस रिकार्ड को सुधारने के अभिप्राय से ६ मास बाद उन्होंने एक और उड़ान भरी किन्तु इस प्रयत्न में वे अपने प्राण गंवा बैठे।

सन् १९३२ में प्रो. पिकर्ड अपने एक साथी के साथ १·२५ मीटर व्यास के एक खटोले में १५,६०० मीटर तक उड़े। उनकी इस सफलता का आधार वे सुविधाएं थीं जिनसे यह खटोला लैस था। सांस लेने के लिए तरल आक्सीजन के अतिरिक्त प्रश्वास की कार्बन डाइआक्साइड को सोखने के लिए भी विशेष रसायनों का प्रबंध था। बन्द होने के कारण खटोले के जीवों पर बाहर के कम दवाव का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता था। अगले ही वर्ष एक अन्य साथी के साथ इन प्रोफेसर महोदय ने १६,११० मीटर तक एक और उड़ान भरी। इसके एक वर्ष बाद एक रूसी उड़ाकू ने और फिर एक अमरीकी युगल सैटल और फोर्डनी ने इस रिकार्ड को लगभग २४,००० मीटर से मात किया। आकार के लिहाज से शायद सबसे बड़ा गुब्बारा अमरीकी 'एक्सप्लोरर' था। १८,००० मीटर तक उड़ने के बाद इसका नीचे का भाग फट गया और इसने नीचे गिरना शुरू किया। यंत्रों से लैस और सुविधाओं से पूर्ण इस गुब्बारे की इस दुर्घटना का अन्त दुर्भाग्यपूर्ण न था, क्योंकि सभी यात्री अन्त में हवाई छतरी (पैराशूट) द्वारा धरती पर उतर आये थे। इसी बीच गुब्बारे के यंत्रों ने भी काफी कुछ जानकारी एकत्र कर ली थी।

१९३४ में फैदोसींको नामक एक रूसी यात्री २१,६६० मीटर तक उड़ सका और नवम्बर १९३५ में ब्रह्माण्ड किरणों के खोजी स्टीवेन्स तथा एण्डरसन को 'एक्सप्लोरर-२' में २१,७२० मीटर तय करने का श्रेय मिला। शायद गुब्बारों में बैठकर अधिकतम ऊंचाई छूने का यही रिकार्ड है।

अमानुषित गुब्बारे

पर इसी बीच मनुष्य ने यह अनुभव किया कि वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे अपनी जान जोखिम में डालने की कोई आवश्यकता नहीं। उसकी इस भावना का कारण थे कुछ छोटे-बड़े आविष्कार, जिनके कारण यंत्रों से लैस गुब्बारों को अकेले ही वायुमंडल की ऊंचाइयों पर भेजना, और उनके द्वारा उपयोगी जानकारी प्राप्त करना संभव हो सका। इनको चालकहीन या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

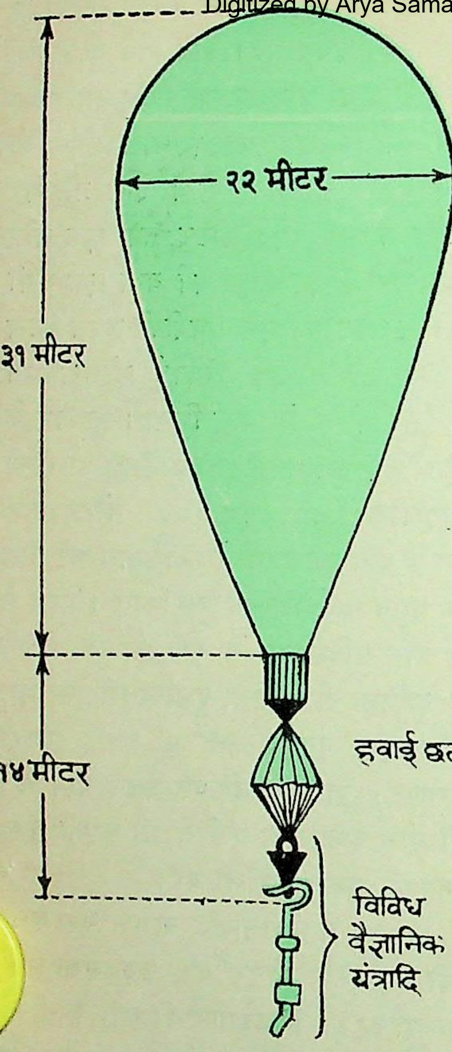

आधुनिक अमानुषित गुब्बारे की रूपरेखा

अमानुषित (अनमैन्ड) गुब्बारे कहा जाता है। इनमें या तो संप्रेषक (ट्रान्समिटर) लगे रहते हैं, जो एकत्रित जानकारी को प्रसारित करते रहते हैं, जो धरती पर ग्रहण कर ली जाती है, अथवा उनमें स्वचालित आलेखक (रिकार्डर) होते हैं। दूसरे प्रकार के गुब्बारों में एक छतरी बांध दी जाती है। विशेष ऊंचाई पर पहुंचकर ये गुब्बारे फट जाते हैं और फिर छतरी की सहायता से धीरे-धीरे धरती की ओर वापस लौट आते हैं। निस्सन्देह हवा की लहरों से इन गुब्बारों के भटककर दूरस्थ प्रदेशों में चले जाने की भी आशंका रहती है। इसके समाधान के रूप में यंत्रों की पेटी पर एक सूचना चिपका दी जाती है जिस पर गुब्बारे को छोड़ने वाली संस्था का नाम व पता लिखा होता है। साथ में यह घोषणा भी छपी रहती है कि जो व्यक्ति इस सामान को उक्त पते पर पहुंचायेगा, उसे नकद इनाम मिलेगा। अतः ग्राम, खेत अथवा मैदान, जहां भी यह सामान गिरे, किसी धनेच्छु की इस पर नजर पड़ ही जाती है और वह गुब्बारा छोड़ने वाले के पास पहुंच ही जाता है।

इस प्रकार के अमानुषित गुब्बारों का प्रयोग संभवतः १८९२ में प्रारंभ हुआ। गुस्ताव हर्माइत द्वारा छोड़ा गया गुब्बारा १५,९०० मीटर ऊपर तक गया। प्रसिद्ध खोजी द बोर्ते ने १८९८ के करीब ५८१ गुब्बारे हवा में भेजे। ब्रह्माण्ड किरणों के परीक्षण के लिए इस प्रकार के गुब्बारों का प्रयोग डा. मिलिकन ने १९२२ में शुरू किया। शायद अब तक सबसे अधिक ऊंचाई छूने वाला अमानुषित गुब्बारा हैम्बर्ग से फ्रैंकबर्गर द्वारा १९३० में छोड़ा गया, जो ३५,३४० मीटर तक पहुंचा।

गुब्बारों के प्रयोग जहां गंभीर प्रकार की जानकारी उपलब्ध करने में सहायक होते हैं; वहां कई बार वे रोचक घटनाओं का भी कारण बनते हैं। सन १९०८ में पंजाब से छोड़ा गया एक गुब्बारा हवा की लहरों द्वारा तिब्बत ले जाया गया। स्थानीय बौद्ध निवासी पहले तो इसे देखकर बहुत डर गये, पर बाद में आकाश के रास्ते आया देवदूत समझकर उसकी अनेक महीनों तक पूजा करते रहे। अमरीका में रबड़ के स्थान पर एक नये प्लास्टिक पदार्थ माइलर का, गुब्बारे बनाने में, प्रयोग हुआ। इस प्रकार के गुब्बारे इतने विशाल होते हैं कि उनमें साधारण आकार की १५-२० हजार कारें समा जायें। रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू होने से पहले ऊंचाई पर लटकने वाले ऐसे गुब्बारों पर जब सूर्य की तिरछी किरणें पड़ती हैं तो इनका रंग सफेद से पीला, नारंगी और अन्त में लाल हो जाता है। जब इन गुब्बारों का प्रयोग प्रारंभ हुआ, उन दिनों उड़न तश्तरियों (फ्लाइंग सॉसर्स) की बहुत चर्चा थी। अतएव अनेक बार इन रंग बदलने वाले गुब्बारों को ही उड़न तश्तरियां समझ लिया गया और उनके पीछे हवाई जहाज दौड़ाये गये।

द्वितीय महायुद्ध के बाद इन ऊर्ध्वगामी गुब्बारों के महत्त्व को रॉकेटों आदि ने काफी कम कर दिया है, तो भी अनेक देशों में वैज्ञानिक खोज के निमित्त वे अभी तक प्रयोग किये जाते हैं। उन्नीसवीं शती में वायुमंडल की खोज के लिए अनेक प्रकार की पतंगों का भी प्रयोग हुआ। परन्तु जितनी जानकारी वर्तमान शती के मध्य तक गुब्बारों द्वारा मनुष्य को प्राप्त हुई, उसकी तुलना शायद किसी अन्य साधन से नहीं की जा सकती।

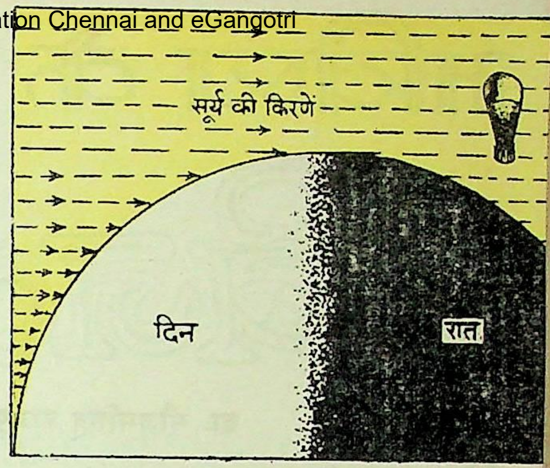

गुब्बारा बनाम उड़न तश्तरी

लेखकों से निवेदन

विज्ञान-लोक में लेख भेजते समय कृपया निम्नलिखित बातों का ध्यान रखे :

१. केवल अप्रकाशित, अप्रसारित तथा मौलिक लेख भेजें।

२. लेख सरस तथा रोचक हो। लेख की शब्द संख्या लगभग २००० हो। साथ में चित्र-सन्दर्भ भी भेजें एवं स्रोत का उल्लेख अवश्य करें।

३. लेख हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर लिखा गया हो। जहां तक सम्भव हो, टाइप कराकर लेख भेजें।

४. लेख के साथ पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा भेजना अनिवार्य है। केवल टिकट कदापि संलग्न न करें अन्यथा अस्वीकृत लेख वापस भेजना सम्भव न होगा।

५. लेख के निर्णय-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार करने से पूर्व कम से कम एक माह तक प्रतीक्षा अवश्य करें।

व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य के बिजली घर

डा. मौजमसिंह राजपूत, एम.एस-सी., पी-एच.डी.

विश्व में उपलब्ध खनिज कोयले की मात्रा विश्व की बढ़ती हुई विद्युत आवश्यकताओं को शायद कुछ ही वर्षों तक पूरी कर पायेगी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कोयले से चलने वाले बिजलीघर सौ साल बाद बन्द हो जायेंगे। विश्व में उपलब्ध खनिज ईंधन भी सौ-डेढ़ सौ साल से ज्यादा नहीं चल पायेंगे। अतः यह आवश्यक हो गया है कि विद्युत शक्ति के अन्य स्रोतों को काम में लाया जाय। परमाणु-विद्युतगृह आजकल के युग की एक नवीन देन है। परमाणु शक्ति के शान्तिमय उपयोगों में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। अणु भट्टी से उत्पन्न ऊष्मा को पानी की भाप बनाने में प्रयुक्त करके विद्युत चर्खी चलायी जाती है और विद्युत पैदा की जाती है। एक और प्रकार की अणु बैटरी में रेडियो-सक्रियता द्वारा उत्पन्न ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है। किन्तु इस विधि से ऊर्जा की मामूली मात्रा काफी अधिक खर्च पर बन सकती है। परमाणु विघटन से जनित ऊर्जा को सीधे विद्युत शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। किन्तु इस दिशा में किये गये प्रयोग अभी बड़े पैमाने पर विद्युत बनाने के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

परमाणु विघटन (न्यूक्लियर फिशन) से विद्युत बनाने की अनेक विधियां हैं। इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के विघटनकारी तत्त्व जैसे यूरेनियम-२३३, यूरेनियम-२३५ या प्लूटोनियम-२३९ प्रयुक्त किये जाते हैं तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के न्यूट्रान प्रयुक्त होते हैं, जिनकी ऊर्जा मामूली ऊष्णीय ऊर्जा के बराबर से हजारों गुनी तक हो सकती है। इन्हीं के हिसाब से इन परमाणु ऊर्जा संस्थानों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

यदि खनिज कोयले से चलित विद्युत-गृह सौ साल तक चल सकते हैं तो यह भी निश्चित है कि परमाणु ऊर्जा द्वारा चलित विद्युतगृह भी ४-५ सौ साल तक चल पायेंगे क्योंकि परमाणु विद्युतगृहों में प्रयुक्त यूरेनियम, प्लूटोनियम एवं अन्य उपयोगी धातुओं का विश्व का भंडार उन्हें इस अवधि तक ही चला पायेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि अभी से कोई ऐसा विद्युतगृह बनाया जाय जिसके आवश्यक पदार्थ विश्व में हजारों वर्षों तक चल सकें।

भारी जल

समुद्र के पानी से उपलब्ध ड्यूटीरियम की मात्रा विश्व की विद्युत शक्ति के लिए अरबों सालों तक पर्याप्त होगी। इसके अतिरिक्त यह भी है कि परमाणु एकीभूतकरण (न्यूक्लियर फ्यूजन) से उत्पन्न ऊर्जा अन्य ऊर्जाओं से कुछ सस्ती पड़ेगी। दो ड्यूट्रानों को एकीभूत करने से अत्यधिक ऊर्जा प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जा सकती है । यह तथ्य वैज्ञानिकों को भविष्य के विजलीघर बनाने में अत्यन्त सहायक होगा । यह एकीभूतकरण अन्य हल्के तत्त्वों में भी सम्भव है । यदि इस सिद्धान्त से विजली बनायी जाय तो यह भी संभव है कि विजली सीधे रूप से ही बनायी जा सकती है तथा ऊष्मीय चक्र को समाप्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त एक विशेष लाभ यह भी है कि इस विधि में कोई रेडियो-सक्रिय राख नहीं निकलती जो कि मानव जाति के लिए अत्यन्त अधिक हानिकारक होती है ।

एकीभूत क्रियाएं

हम यह जानते हैं कि हलके तत्त्वों में बंधन ऊर्जा भारी तत्त्वों की अपेक्षा कम होती है । यदि दो हलके तत्त्वों को एकीभूत किया जाय तो उनसे ऊर्जा प्राप्त हो सकती है । मुख्य क्रियाओं में प्रोटान+प्रोटान, प्रोटान+ड्यूट्रान, ड्यूट्रान+ड्यूट्रान, ड्यूट्रान+ट्रिटान एवं ट्रिटान+ट्रिटान हैं । इन क्रियाओं में ड्यूट्रान+ट्रिटान क्रिया सबसे अधिक ऊर्जा देती है । यह ऊर्जा लगभग १८० लाख इलैक्ट्रान वोल्ट है । चूंकि सभी धनात्मक कण एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं, इसलिए उनको एकीभूत करने की संभावना कणों की एक न्यूनतम चरम ऊर्जा के बाद समाप्त हो जाती है । यह चरम ऊर्जा उनकी एकीभूत सम्भावना ऊर्जा के बाद बढ़ती है । उपरोक्त सभी क्रियाओं में यह देखा गया है कि ड्यूट्रॉन ही एकीभूतकरण भट्टी के लिए सबसे उपयोगी है । ट्रिटान भी उपयोगी है किन्तु वह रेडियो-सक्रिय है । साधारण हाइड्रोजन (प्रोटान+प्रोटान) का एकीभूतकरण बिलकुल असम्भव है । यदि हाइड्रोजन के समस्थानिकों हाइड्रोजन ड्यूटीरियम और ट्रिटीयम में से बाहरी इलैक्ट्रान को निकाल दिया जाय तो उन्हें प्रोटान, ड्यूट्रान एवं ट्रिटान कहते हैं । उपरोक्त एकीभूत क्रियाओं के क्रियाफल इस प्रकार हैं—

ड्यूट्रान+ड्यूट्रान=हीलियम-३+न्यूट्रान (५०%)

ड्यूट्रान+ड्यूट्रान=ट्रिटान+प्रोटान(५०%)

ट्रिटान+ड्यूट्रान=हीलियम-४+न्यूट्रान

हीलियम-३+ड्यूट्रान=हीलियम-४+प्रोटान

लिथियम-६+न्यूट्रान=हीलियम-४+ट्रिटान

यदि इन एकीभूत क्रियाओं की 'हाइड्रोजन+आक्सीजन=जल' की एकीभूत क्रिया से तुलना करें तो अनुमानतः इन क्रियाओं से मिलने वाली ऊर्जा जल की क्रिया से मिलने वाली ऊर्जा से लगभग १० लाख गुनी अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। इन एकीभूतकरण क्रियाओं से बिजली बनाने का विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में तभी आया था, जब इन क्रियाओं की खोज की गयी थी।

वास्तविक उदाहरण

वैज्ञानिकों का मत है कि सूरज से आने वाली ऊर्जा भी एकीभूतकरण क्रियाओं का प्रतिफल है । सूर्य का अधिकांश भाग हाइड्रोजन का बना है । इसकी बाहरी तह का तापमान ५०,०००° सें. और भीतरी भाग का तापमान १,५०,००,०००° सें. है । इतने अधिक ताप पर सभी गैसें बड़े तेज वेग से जलती हैं । उनके सभी अणु पूर्णतः आयनी-

खनिज कोयले से चलित बिजलीघर सौ साल तक चल सकते हैं और परमाणु ऊर्जा चलित बिजलीघर चार-पांच सौ साल तक चल पायेंगे । इसलिए यह आवश्यक है कि अभी से कोई ऐसा बिजलीघर बनाया जाय जिसके आवश्यक पदार्थ विश्व में हजारों वर्षों तक चल सकें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

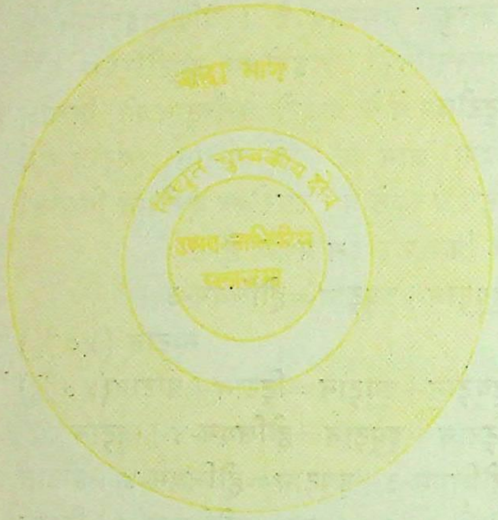

चित्र १—प्लाज्मा को चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा सीमित करने के यंत्र की रूपरेखा

कृत हो जाते हैं। इस आयनीकृत अवस्था को पदार्थ की चौथी अवस्था या प्लाज्मा अवस्था कहते हैं। चूंकि आयनीकृत अवस्था में गैस के सभी इलैक्ट्रान अलग हो जाते हैं और अणु धनात्मक आवेष्ठित रहते हैं, उनमें आपस में चुम्बकीय प्रतिकर्षण बल लगता है। किन्तु उनके अधिक वेग से उत्पन्न ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि वह चुम्बकीय प्रतिकर्षण बल को पार कर जाती है और गैस आयनीकृत अवस्था में ही बनी रहती है। सूर्य के अंतःस्थल में हाइड्रोजन के अणु एकीभूत हो जाते हैं और उनसे ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह क्रिया एक सतत प्रक्रिया बनी रहती है और हाइड्रोजन एक चक्र क्रिया के बाद पुनः प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार हाइड्रोजन की मात्रा निश्चित रही आती है। इस प्रक्रिया के एक पूर्ण चक्र में लगभग २६० लाख इलैक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा प्राप्त होती है।

पृथ्वी पर सम्भावना

यदि एकीभूत क्रियाएं इतने अधिक ताप पर जिस अवस्था में सम्भव हैं, क्या वे क्रियाएं साधारण प्रयोगशाला में की जा सकती हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ये क्रियाएं प्लाज्मा अवस्था में ही सम्भव हैं। निश्चित रूप से, जो तापमान सूर्य की कोर में हैं वे पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं किये जा सकते। जो दबाव प्लाज्मा गैस का वहां पर है, वह यहां पर नहीं बनाया जा सकता। इन सभी अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए अनेक विधियां काम में लायी जा चुकी हैं किन्तु कोई भी विधि प्रयोगात्मक दृष्टि से सफल नहीं हुई है। एक सफल एकीभूतकरण भट्टी बनाने के लिए अनेक समस्याएं सुलझानी पड़ेंगी।

यदि प्लाज्मा का तापमान कम रखा जाय तो उससे विकिरण द्वारा नष्ट ऊर्जा एकीभूतकरण से उत्पन्न ऊर्जा से भी कम होगी। ड्यूट्रान और ट्रिटान के प्लाज्मा को स्वतः ऊर्जा देने के लिए आवश्यक तापमान ५,००,००,०००° सें. और केवल ड्यूट्रान के प्लाज्मा के लिए ४०,००,००,०००° सें. है। ये ताप सूर्य के ताप से भी ज्यादा हैं। सूर्य का आकार बहुत बड़ा है और उससे विकीर्ण ऊर्जा के सभी क्रियाणु (फोटान) उसी के द्वारा शोषित कर लिये जाते हैं। किन्तु प्रयोगशाला में प्लाज्मा विकिरण द्वारा ही ठंडा हो जायेगा और प्रक्रिया रुक जायेगी।

चित्र २—प्लाज्मा क्रिया में उत्पन्न न्यूट्रान से ऊर्जा प्राप्त करने के यंत्र की रूपरेखा

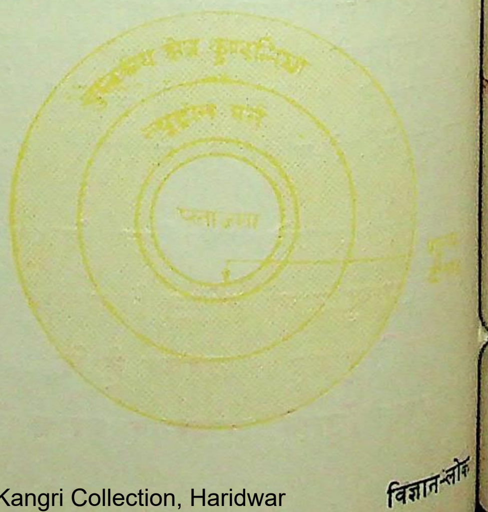

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए प्लाज्मा गैस का तापमान बढ़ाने के लिए किसी वाहरी माध्यम की आवश्यकता है। अनुमानतः १०० वाट प्रति घन सेमी की दर पर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ड्यूट्रान गैस का तापमान १×१६×१०^{६} डिग्री सेंटिग्रेड तथा दवाव ५३० वातावरण (एटमास्फीयर) के वरावर होना चाहिए।

क्या यह सम्भव है ?

अधिक तापमान पर नाभिकीय एकीभूतकरण की सम्भावनाओं को समझने के लिए एक वड़े वरतन में ड्यूटान तथा ट्रिटान का मिश्रण लिया। प्रक्रिया करने के लिए दोनों प्रकार के अणु अधिक पास होने चाहिए। इन अणुओं को पास लाने की पहली सम्भावित विधि यह है कि उनके चारों ओर घूमने वाले इलेक्ट्रान, मैसान द्वारा विस्थापित कर दिये जायें जिससे परमाणुओं का आकार काफी छोटा हो जायगा। दूसरी संभावना में गैस को काफी ऊंचे तापमान तक गरम किया जाय। पहली संभावना सतत क्रिया के लिए उपयुक्त नहीं है। दूसरी संभावना के अनुसार यदि गैस

चित्र ३––साधारण पिंच प्रभाव की रूपरेखा

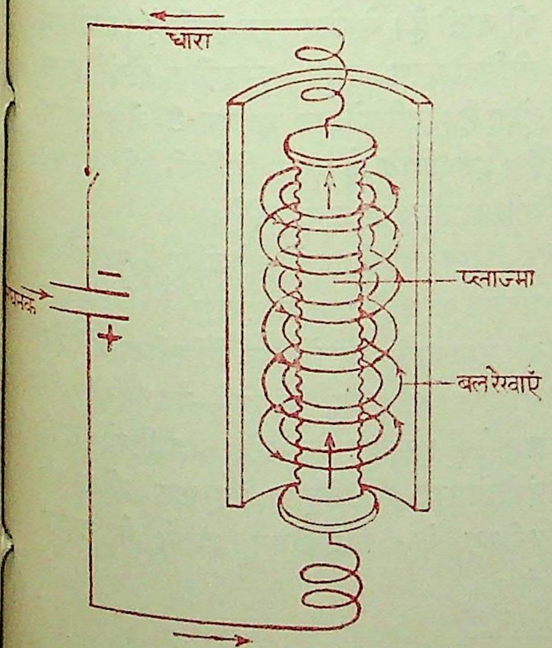

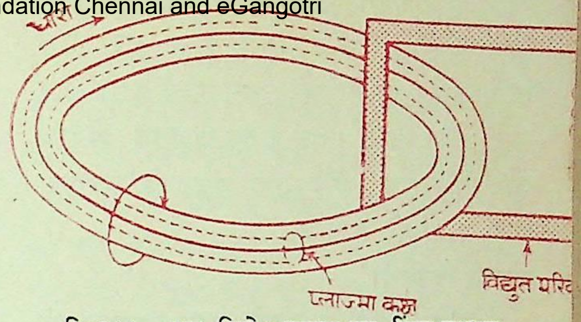

चित्र ४––एक विशेष प्रकार का पिंच प्रभाव

को काफी ऊंचे तापमान तक गरम किया जाय तो उसके सभी इलैक्ट्रान अलग हो जायेंगे और गैस प्लाज्मा अवस्था में आ जायेगी।

गैस को इसी स्थिति में रोकने के लिए अनेक विधियां वतायी गयी हैं, फिर भी यह एक जटिल समस्या है। इनमें पिंच प्रभाव द्वारा उपयुक्त विधियां मुख्य हैं। अधिकांश विधियां स्थायी अवस्था प्राप्त करने में असफल हैं क्योंकि अधिक ताप पर प्लाज्मा रिसने लगेगा और अन्य अशुद्धियां उसके अन्दर चली जायेंगी और प्लाज्मा से टकरायेंगी। इसके कारण प्लाज्मा की काफी ऊर्जा नष्ट हो जायेगी। इसके अतिरिक्त इतने अधिक तापमान (≅१०^{८} डिग्री सें.) के प्लाज्मा को वरतन में रखना भी एक समस्या है। कोई भी ऐसी धातु नहीं है जो इतने ताप पर न पिघले। सैद्धान्तिक रूप से ऐसा कोई पदार्थ उपलब्ध हो जो इतने अधिक दबाव और ताप को सहन कर सके, तो समस्या सुलझ सकती है। समस्या को सुलझाने के लिए केवल एक ही सम्भावना है कि प्लाज्मा को चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा समित किया जाय। प्रस्तावित यंत्र की रूपरेखा चित्र १ में दिखायी गयी है।

अगर किसी विधि द्वारा प्लाज्मा को रोक भी लिया गया और गरम भी कर लिया तो क्रिया में उत्पन्न न्यूट्रान को किस प्रकार काम में लाया जाय ? न्यूट्रान क्रिया में उत्पन्न ऊर्जा का लगभग आधा भाग अपने साथ ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। इनसे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए क्रियाकारी वरतन को ऐसी परत द्वारा ढक दिया जाना चाहिए जो उनसे ऊर्जा ले ले और उन्हें धीमा करदे। यह परत वास्तव में एक शून्य दीवार है। ऐसे एक यंत्र की रूपरेखा चित्र २ में दी गयी है।

स्थायी विधियां

यदि चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा प्लाज्मा को सीमित करना सम्भव है तो वह एक स्थायी विधि होगी। चुम्वकीय विधियों द्वारा किये गये प्रयोगों में प्लाज्मा को सीमित करने की दिशा, पिंच प्रभाव, एक प्रमुख खोज है। इस प्रभाव के अन्तर्गत यदि किसी प्लाज्मा में होकर धारा प्रवाहित की जाय तो उसकी चुम्वकीय रेखाएं बेलनाकार होंगी। ये वल-रेखाएं प्लाज्मा को सीमित रखेंगी और उसे अन्दर की ओर दवायेगी। धारा की मात्रा चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता से जानी जा सकती है। कणों के चुम्वकीय सीमितीकरण के लिए लाखों एम्पीयर की धारा आवश्यक है। जैसे-जैसे धारा की मात्रा वढ़ेगी वैसे ही उसकी बल-रेखाएं प्लाज्मा को अन्दर की ओर दवायेंगी।

चित्र ५—जीटा मशीन की रूपरेखा

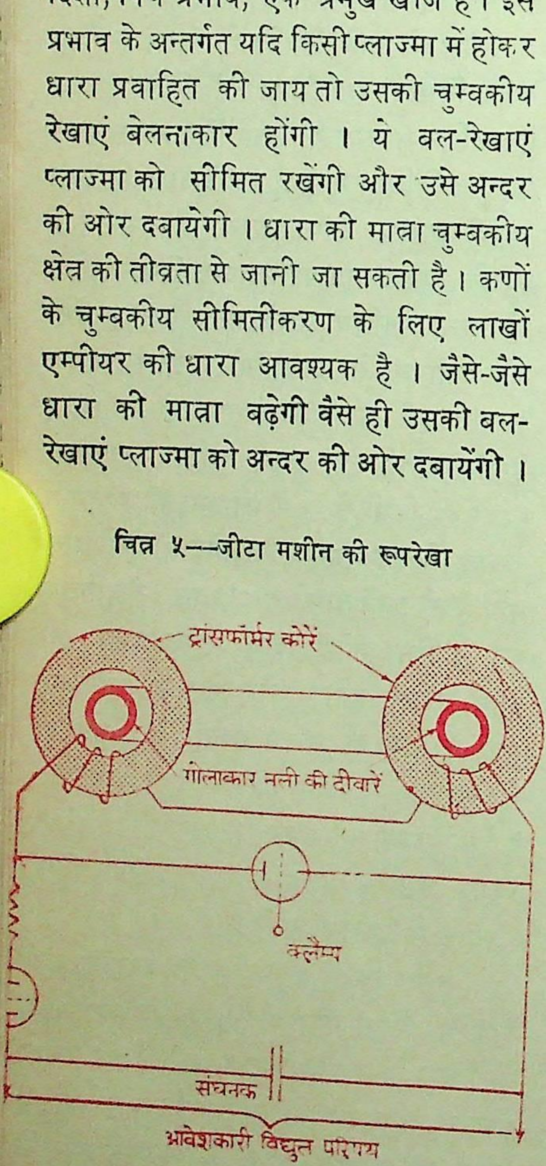

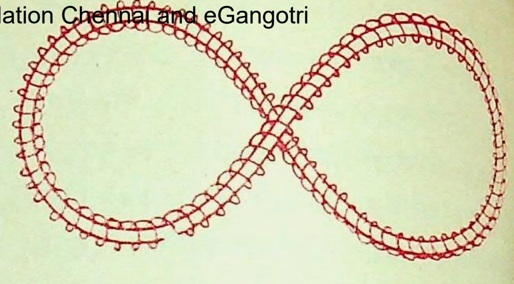

चित्र ६—स्टेलरेटर की नली तथा उस पर लिपटी धारावाहिनी कुंडलियां

प्लाज्मा सीमित रहा आयेगा! इस सिद्धान्त को लेकर अनेक यंत्र वनाये गये हैं जो नियोजित ऊष्मा नाभिकीय क्रियाओं को सीमित रख सकते हैं। इनमें जीटा, स्टेलरेटर परहैप्साट्रान एवं डी.सी. एक्स-मुख्य हैं।

जीटा मशीन में चुम्वकीय क्षेत्र एक डफनट आकार की नली की तरह का होता है जिसका व्यास लगभग २·७० मीटर होता है और उसका छेद ° का होता है। २,००,००० एम्पीयर की धारा एवं ५×१०⁶ डिग्री सें. तक के तापमान इसमें पैदा किये जा सकते हैं। किन्तु अभी इस विधि से सतत सुनियोजित नाभिकीय क्रिया नहीं शुरू हुई है।

स्टेलरेटर मशीन में दो नलियां प्रयुक्त की जाती हैं। ये गोलाकार होती हैं। कणों का सीमितीकरण बाह्य चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा होता है। नलियों का आकार 8 जैसा होता है। इस विधि में अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है।

अव तक की गयी खोजों एवं सुधारों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि केवल दो समस्याएं—कणों का सीमितीकरण एवं प्लाज्मा का गरम करना—वैज्ञानिकों के सामने हैं। संसार के अनेक वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की मेहनत का फल शीघ्र ही भविष्य के विजलीघर वनाने में सफल होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियां

समुद्री मालगाड़ी

जापान में वन्दरगाहों पर जहाजों में माल लादने-उतारने में समय की वचत तथा सुरक्षा एवं सुविधा की वृद्धि के लिए टोकियो विश्वविद्यालय के औद्योगिक विज्ञान संस्थान का एक अनुसंधान दल एक समुद्री मालगाड़ी चलाने के प्रयोग कर रहा है। इस 'ट्रेन' में 'इंजिन' के रूप में एक मुख्य जहाज होगा। उसके साथ लगभग ३० मीटर लम्बे तैरते हुए 'डिब्बे' जुड़े होंगे। असवाव ढोने की इस नयी योजना की एक विशेषता यह भी होगी कि आंधी तूफान आ जाने पर इसकी सुरक्षा सरलता से हो सकेगी। डिब्बों में खोखले हौज वने हैं। तूफान के आसार दिखायी पड़ते ही इनको पानी से भर दिया जायगा और पूरी मालगाड़ी समुद्र जल के नीचे तैरने लगेगी। 'इंजिन' इस प्रकार जल के भीतर सुरक्षित मालगाड़ी को धीमी गति से खींचता हुआ गन्तव्य स्थान तक ले जा सकेगा—माल नष्ट होने अथवा गुम होने का खतरा मोल लिये विना। संकट टल जाने पर हौजों का पानी निकाल कर उनमें फिर हवा भर दी जायगी और मालगाड़ी समुद्र तल पर फिर उभर आयगी।

वायुयान चालक की 'उड़न-सीट'

वायुयान यदि शत्रु के प्रदेश में या खतरनाक क्षेत्र में गिर पड़े अथवा उतरने को विवश हो जाय तो बेचारे चालक की कुगति निश्चित ही है। ऐसी स्थितियों में चालकों की रक्षा करने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका में उपाय खोजे जा रहे हैं। एक वायुयान कम्पनी ने चालक की ऐसी 'उड़न-सीट' का आविष्कार किया है जो आवश्यकता पड़ने पर वायुयान से छिटक कर आटोजिरो का रूप धारण कर लेती है। 'सेवर' नामक इस सीट में तह किये हुए रोटर, जेट इंजिन और नियंत्रक यंत्र हैं जो चालक के वायुयान से कूदते ही अपने आप खुल जाते हैं और कार्य करने लगते हैं। यदि चालक बेहोश हो गया हो तो भी, रेडियो-किरण के संकेत से, यह सीट वायुयान से छिटक पड़ेगी और चालक को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देगी जहां वह स्वचालित पैराशूट द्वारा भूमि पर आ सकेगा। इस उड़न-सीट के इंजिन में २०० किलोमीटर की गति से आधा घण्टे की उड़ान के लायक काफी ईंधन होता है।

प्रत्येक कार में टेलीफोन

अमरीकी टेलीफोन कम्पनी (बेल पद्धति) ने चल-टेलीफोन प्रणाली की एक नयी योजना तैयार की है जिसके द्वारा प्रत्येक कार में टेलीफोन लग सकेगा। वर्तमान में कार टेलीफोन सेवा संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक नगरों में तथा इंगलैण्ड के लन्दन व दक्षिण लंकाशायर नगरों में सीमित रूप में उपलब्ध है। प्रत्येक नगर में केवल कुछ सौ व्यक्ति ही इस सुविधा का उपभोग कर सकते हैं। किन्तु अब अमरीकी टेलीफोन कम्पनी की इस नवीन योजना के पूर्ण हो जाने पर प्रत्येक नगर में पांच लाख चल-टेलीफोन प्रयोग में आ सकेंगे। इन चल-टेलीफोनों का नियंत्रण कम्प्यूटर-प्रणाली से होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

English
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles' letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- **Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.**
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The work books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I......Price : 80 P
Book II......Price : Re. 1-00
Book III......Price : Re. 1-20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

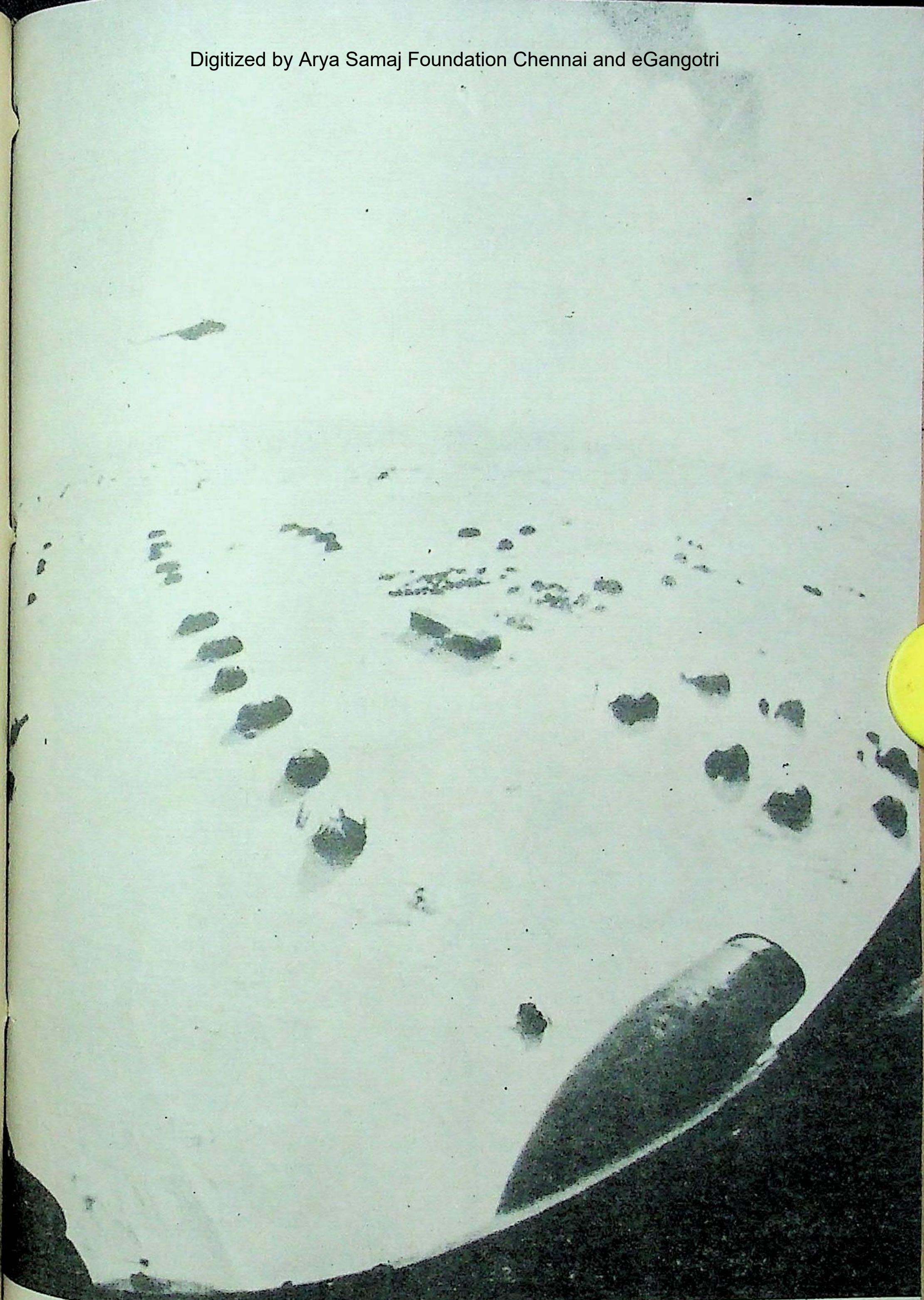

यह क्या चन्द्रमा के किसी अजनबी अनोखे भाग का फोटो है ?
जी नहीं, यह तो पृथ्वी के ही उत्तरी ध्रुव के निकट स्थित सोवियत अनुसंधानकर्ताओं के एक विशाल कैम्प का दृश्य है जो हेलीकोप्टर से लिया गया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. 6589/60
Price : Re. 1 VIGYAN-LOK : May 1972 Regd. No. L 1410
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

जून अंक के आकर्षण

दूर देश के पंछी

हजारों किलोमीटर की यात्रा करके आने वाले ये पक्षी—जिनमें से कुछ तो पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंच जाते हैं—पक्षियों के प्रवास की रोचक कथा।

खून चूसने वाले मेहमान

हमें कुछ ऐसे मेहमानों को भी पालना पड़ता है जो हमारे आतिथ्य के बदले में हमारा खून चूसते हैं ! कौन हैं ये खून चूसने वाले मेहमान ?

गांठ से (सं)गणक

आदि काल में गांठ लगाकर गिनती की जाती थी—आज संगणक (कम्प्यूटर) गणना कार्य कर रहे हैं। संख्या की गिनती के प्रारम्भ और क्रमिक विकास का इतिहास।

चन्द्रमा का भू-विश्लेषण

मानव चन्द्रतल पर विचरण करके उसकी भूमि के परीक्षण-विश्लेषण द्वारा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों के उद्‌घाटन हेतु प्रयत्नशील है। इन प्रयासों पर तनिक प्रकाश।

वायुमण्डल के अद्‌भुत रहस्य (३)

इस लेखमाला की तीसरी कड़ी में वायुमण्डल के अन्य-अन्य अद्‌भुत एवं रोचक रहस्यों का वर्णन है।

रंगीन चित्रमय लेख : आकर्षक बहुरंगी मुखपृष्ठ

(20 मई तक प्रकाश्य)

एक प्रति Re. 1·00 : वार्षिक Rs. 12·00

अपनी प्रति आज ही अपने न्यूजएजेन्ट से सुरक्षित करा लीजिए या हमें लिखिए

मेहरा न्यूजपेपर्स, हास्पिटल रोड, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

A.H.W.